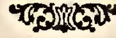
॥ श्रीः ॥

गोकुलदास संस्कृत ग्रन्थमाला

४८



दीक्षा-रहस्य

लेखक

याज्ञिकसम्राट्

पण्डित वेणीरामशर्मा गौड वेदाचार्य

अवकाशप्राप्त वेदविभागाध्यक्ष-

गोयनका संस्कृत कालेज

वाराणसी



चौखम्भा ओरियन्टालिया

प्राच्यविद्या एवं दुर्लभ ग्रन्थों के प्रकाशक एवं वितरक

वाराणसी दिल्ली

प्रकाशक

चौखम्भा ओरियन्टालिया

पो० आ० चौखम्भा, पो० बाक्स नं० ३२

गोकुल भवन, के. ३७/१०९, गोपाल मन्दिर लेन

वाराणसी–२२१००१ (भारत)

टेलीफोन : ६३३५४ टेलीग्राम : गोकुलोत्सव

शाखा—बंगलो रोड, ९ यू० बी० जवाहर नगर

दिल्ली–११०००७ फोन : २२१६१७

प्रथम संस्करण : १९८३

मूल्य : रु० [redacted]

मुद्रक—श्रीगोकुल मुद्रणालय, वाराणसी–२२१००१

GOKULDAS SANSKRIT SERIES
NO. 48

DĪKṢĀ-RAHASYA

By

Pt. BEṆĪRĀM ŚARMĀ GAUḌA

Vedacārya, Kāvyatīrtha

Formerly Head of the Vdea section

Goenaka Sanskrit College, Varanasi

CHAUKHAMBHA ORIENTALIA

A House of Oriental and Antiquarian Books

VARANASI DELHI

Publishers

CHAUKHAMBHA ORIENTALIA
P. O. Chaukhambha, Post Box No. 32
Gokul Bhawan, K. 37/109, Gopal Mandir Lane
VARANASI–221001 (India)
Telephone : 63354 Telegram : Gokulotsav

Branch—Bungalow Road, 9 U. B. Jawahar Nagar
DELHI–110007 Phone : 221617

First : Edition 1983
Price : Rs. [redacted]

अथ

शुक्लयजुर्वेदीय रुद्राष्टाध्यायी

सम्पादक

श्री पं० वेणीरामशर्मा गौड

मूल्य रु० १०–००

१९८३

भूमिका

दीक्षामूलं जगत्सर्वं दीक्षामूलं परं तपः ।
दिव्यं ज्ञानं यतो दद्यात् कुर्यात्पापस्य संक्षयम् ॥
(रुद्रयामल)

'यह सम्पूर्ण जगत् दीक्षा-मूलक है और दीक्षा-मूलक ही परम तप है। क्योंकि दीक्षा ही दिव्य ज्ञानको देनेवाली है और वह समस्त पापों का नाश करनेवाली है।'

अनादि काल से दीक्षा की प्रथा भारतवर्ष में प्रचलित है। अतएव प्राचीन काल में सभी मनुष्य गुरु के द्वारा दीक्षा-ग्रहण की आवश्यकता और महत्ता को स्वीकार करते थे और उस समय सभी लोगोंकी मान्यता थी कि दीक्षा-ग्रहण से ही मनुष्य की आध्यात्मिक उन्नति हो सकती है, अन्यथा नहीं। अतः चारों वर्ण **'वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः'** (पद्मपुराण, स्वर्गखण्ड ५२।५१) के अनुसार ब्राह्मण को ही अपना गुरु मानते थे और उनसे ही दीक्षा-ग्रहण करते थे। किन्तु अब दीक्षा-ग्रहण की व्यवस्था बिगड़ गई है। कुछ लोग स्वार्थी साधु-संन्यासियों के चक्कर में पड़कर उनसे दीक्षा-ग्रहण करने लग गये हैं। वस्तुतः साधु-संन्यासियोंको वर्ण-चतुष्टय को दीक्षा देने का अधिकार ही नहीं है, किन्तु उन्होंने वर्णचतुष्टय को दीक्षा देना प्रारम्भ कर दिया है। वर्तमान समय में साधु-संन्यासियों ने वर्ण-चतुष्टयको दीक्षा देना उदरपूर्ति का मुख्य साधन बना लिया है, जिससे दीक्षा का स्वरूप अत्यन्त विकृत हो गया है।

कुछ सज्जन तो वर्णव्यवस्था के अनुसार जन्मना संन्यासाश्रम के अधिकारी न होने पर भी बलात् संन्यासी बनकर भोलीभाली जनता को शिष्य बनाकर उनसे धन-सम्पत्ति लूटते हैं। ऐसे स्वार्थ-

परायण लोभी, पाखण्डी साधु-संन्यासियों से चारों वर्णों को सदा सतर्क रहना चाहिये और उनसे कभी भी दीक्षा-ग्रहण नहीं करना चाहिये।

सुप्रसिद्ध विद्वान् श्रीयुत डाक्टर नीरजाकान्त चौधुरी एम्० ए०, एल्० एल्० बी०, पी० एच्० डी० महोदयने 'कल्याण' मासिक पत्र के विशेषाङ्क 'उपासना–अङ्क' (पृष्ठ ५२६) में लिखा है कि—'आजकल अकस्मात् प्राप्त हुए जिस किसी संन्यासी को गुरु बनाने का नया प्रचलन चल गया है। संन्यासी को तो अधिकार ही नहीं है कि वह गृहस्थको या स्त्रीजन को दीक्षा प्रदान करे।'

शास्त्रार्थमहारथी पण्डित श्रीमाधवाचार्यजी शास्त्री ने अपनी 'क्यों' पुस्तक के उत्तरार्ध (पृष्ठ ५१७, ५१६ और ५२२) में कलियुगी, पाखण्डी साधु—संन्यासियों के विषय में बहुत ही महत्त्वपूर्ण तथ्य लिखा है—

(क) आज ज्ञान के नाम पर जितना पाखण्ड, अनाचार, दुराचार और अत्याचार का बोलबाला हो रहा है, उतना अन्य किसी नाम पर नहीं। एक अधेले कीमत की गेरूकी गंठिया साक्षात् राम की भी अर्धाङ्गिनी को विश्वासघातपूर्वक चुरा सकने का अवसर दे सकती है। लाखों अबोध बालक और भोलीभाली विधवाएँ और सधवाएँ भी आज कथित ज्ञानियों के गुरुडम की प्रचण्ड अग्नि में भस्मसात् हो रही हैं। अनेकों मण्डलेश्वर, रण्डलेश्वर बने अपने दोनों लोक नष्ट कर रहे हैं।

(ख) कलियुगी सिद्धों का अनुभव है कि चेलों को अपेक्षा चेलियाँ बनाना अधिक लाभदायक है। उनका सूत्र है कि—

चेला दे अधेला और चेली दे अधेली साथ में गुड़ की भेली और एकान्त में आवे अकेली।

(ग) वर्तमान काल के 'गोरू' जी, जो फूल, बताशे और नोट की धज्जी हाथ में थमें देखते ही **'कानाबातो कुरं, तू चेली मैं गुरं'** बनाने को उतावले रहते हैं।

(घ) किसी अपरिचित व्यक्ति की बहिरङ्ग वेषभूषा, व्याख्यान-कला, गोष्ठी–प्रसाद और एजेन्टों द्वारा प्रचारित सिद्धता आदि तात्कालिक प्रदर्शन के प्रभाव से प्रभावित होकर उसे गुरु धारण कर लेने पर समय पाकर **'करतब वायस वेश मराला'** की विप्रतिपत्ति उत्पन्न हो सकने की जितनी संभावना हो सकती है, उतनी वंशपरम्परा से सुपरिचित व्यक्ति के दीक्षा-गुरु बनाने पर नहीं। अतः कुलपरम्परा से सुपरिचित विज्ञात कुलशील सदाचारी गुरु से ही दीक्षा-ग्रहण करना चाहिये।

गतवर्ष हरियाणा के सुप्रसिद्ध विद्वान् पण्डित श्रीचतुर्भुजजी शास्त्री (मु० जभाला, पो० असन्ध जि० करणाल) काशी में आये थे। उन्होंने एक दिन प्रसङ्गवश अत्यन्त दुःख के साथ मेरे से कहा—'आचार्यजी, आजकल लोभी, पाखण्डी साधु-संन्यासियों के द्वारा बड़ा अनर्थ हो रहा है। यह भारतवर्ष के समस्त प्रान्तों में, नगरों में, कसबों में और ग्रामों में पहुँच कर अपने व्याख्यानकलाकौशल के द्वारा और अपने दलालों के द्वारा भोलीभाली जनता को प्रभावित कर उन्हें शिष्य बनाते हैं। वस्तुतः साधु-संन्यासियों को गृहस्थों को शिष्य बनाने का अधिकार ही नहीं है, फिर भी ये गृहस्थों को शिष्य बनाकर उनका धन और धर्म दोनों ही लूटते हैं। साधु-सन्यासियों का यह कार्य बहुत ही घृणित और निन्दनीय है। अतः आप साधु-संन्यासियों के इस प्रकार के धर्मविरुद्ध कार्य को रोकने के लिये एक महत्त्वपूर्ण पुस्तक लिखिये, जिसको पढ़ कर भोलीभाली जनता साधु–संन्यासियों के धर्मविरुद्ध कार्य से सतर्क हो जाय और उनके शिष्य न बनें।'

मैंने अपने परम हितैषी शास्त्रीजी की आज्ञानुसार 'दीक्षा-रहस्य' पुस्तक लिखी है। इस पुस्तक में दीक्षा-सम्बन्धि अनेक आवश्यक और महत्त्वपूर्ण विषय दिये गये हैं, जिनको पढ़ने से दीक्षा-प्रेमियों को अपने-अपने धर्म और कर्तव्य का भलीभाँति परिज्ञान होगा और वे अनधिकारी साधु-संन्यासियों से दीक्षा-ग्रहण न कर कुलीन, सदाचारी

और सुयोग्य गृहस्थ ब्राह्मणों से ही दीक्षा-ग्रहण करेंगे। इस पुस्तक के निर्माण का समस्त श्रेय पण्डित श्रीचतुर्भुजजी शास्त्री को ही है, जिनकी प्रेरणा से यह पुस्तक लिखी गयी है। अतः मैं शास्त्रीजी का विशेष आभारी हूँ।

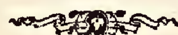
आशा है, इस पुस्तक से दीक्षा-प्रेमियों को विशेष लाभ होगा।

अन्तमें मैं चौखम्भा ओरियन्टालिया, वाराणसी के अध्यक्ष महोदय को विशेष धन्यवाद देता हूँ, जिन्होंने दीक्षा-प्रेमियों के कल्याणार्थ 'दीक्षा-रहस्य' प्रकाशित कर प्रशंसनीय कार्य किया है।

काशी
दीपावली, सं० २०३९
दि० १५-११-१९८२

वेणीराम गौड

विषय-सूची



॥ श्रीहरिः ॥

दीक्षा-रहस्य

वागीशाद्याः सुमनसः सर्वार्थानामुपक्रमे ।
यं नत्वा कृतकृत्याः स्युस्तं नमामि गजाननम् ॥ १ ॥
वेणीरामेण गौडेन श्रीविद्याधरसूनुना ।
दीक्षारहस्यं सर्वेषां लाभार्थं क्रियतेऽधुना ॥ २ ॥

दीक्षा-शब्दार्थ

'दीक्ष' धातु से **'गुरोश्च हलः'** इस पाणिनीय सूत्र से अकार प्रत्यय करने पर तथा **'अजाद्यतष्टाप्'** इस सूत्र से 'टाप्' प्रत्यय होने पर 'दीक्षा' शब्द बनता है। यह शब्द स्वभाव से ही आकारान्त स्त्रीलिङ्ग है।

धातुपाठ में **'दीक्ष-मौण्ड्येज्योपनयन-नियम-व्रतादेशेषु'** ऐसा पाठ पाणिनीय है। यों तो सभी धातु जिनके एक अर्थ भी धात्वर्थ निर्देश में दिये गये हैं, अनेकार्थक होते हैं। 'दीक्ष' धातु का मौण्ड्य, इज्या, उपनयन, नियम, व्रत और आदेश अर्थ होता है। अतः 'दीक्षा' शब्द के अनेक अर्थ हो सकते हैं।

'दीक्षा' में दो शब्द हैं—दी और क्षा। 'दी' का अर्थ है—ज्ञान के सम्बन्ध को देना और 'क्षा' का अर्थ है—मिथ्या ज्ञान, अधर्म और विषयाशक्ति—इन तीनों प्रकारके मलका नाश करना।

दीक्षा—शब्दका अर्थ अनेक धर्माचार्योंने इस प्रकार किया है—

दीयते ज्ञानसम्बन्धः क्षीयते च मलत्रयम् ।
दीयते क्षीयते येन सा दीक्षेति निगद्यते ॥

(शैवाचारप्रदीपिका २।१५)

'यह ज्ञानके सम्बन्धको प्रदान करती है और मिथ्या ज्ञान, अधर्म और विषयाशक्ति—इन तीनों प्रकारके मलका नाश करती है। अतः जिससे ज्ञानकी प्राप्ति हो और त्रिविध मलका नाश हो, उसे दीक्षा कहते हैं।'

दीयते ज्ञानमत्यर्थं क्षीयते पाशबन्धनम् ।
अतो दीक्षेति देवेशि ! कथिता तत्त्वचिन्तकैः ॥
मनसा कर्मणा वाचा यत्पापं समुपार्जितम् ।
तेषां विश्लेषकरणी परम-ज्ञानदा यतः ॥
तस्माद्दीक्षेति लोकेऽस्मिन् गीयते शास्त्रवेदकैः ।
विज्ञानफलदा सैव द्वितीया लयकारिणी ॥
तृतीया मुक्तिदा चैव तस्माद्दीक्षेति गीयते ॥

(योगिनीतन्त्र)

'दीक्षा अत्यधिक ज्ञान प्रदान करती है, पाशबन्धन को क्षीण करती है, अतएव हे देवि ! तत्त्वचिन्तकों ने इसे 'दीक्षा' कहा है। मन, कर्म तथा वचन से जितने पाप संचित किये हैं, उन सभी पापों का नाश कर परम ज्ञान को प्रदान करती है। इसीलिये इस संसार में शास्त्रज्ञ लोग इसे दीक्षा के नाम से गान करते हैं। यह प्रथम तो विज्ञान-फल को प्रदान करती है, द्वितीय गुरुरूपी परमात्मा से मिला देती है और तृतीय मुक्ति प्रदान करती है, इसलिये मनुष्य इसे दीक्षा के नाम से गान करते हैं।'

दीयते ज्ञानसम्भारः क्षालनात् पापसन्ततिः ।
ततो दीक्षेति सा प्रोक्ता मुनिभिस्तन्त्रवेदिभिः ॥
विनाऽनया न लभ्येत सर्वमन्त्रफलं यतः ।
ज्ञानं दिव्यं यतो दद्यात् कुर्यात्पापक्षयं यतः ।
तस्माद्दीक्षेति सा प्रोक्ता देशिकैस्तन्त्रवेदिभिः ॥

(शारदातिलक)

'दीक्षा ज्ञान-समूह को प्रदान करती है और पापराशि को धो देती है, अतः तन्त्रवेत्ता मुनियों ने इसे दीक्षा कहा है। दीक्षा के बिना सभी मन्त्रों के फल की उपलब्धि नहीं होती। दीक्षा दिव्य ज्ञान प्रदान करती है और पापों का क्षय कर देती है, अतएव तन्त्रवेत्ता देशिकगण इसे दीक्षा कहते हैं।'

दीयते विमलं ज्ञानं क्षीयते पापपद्धतिः ।
तेन दीक्षोच्यते तन्त्रे स्वागमार्थबलाबलात् ॥

(लघुकल्पसूत्र)

'दीक्षा विमल ज्ञान को प्रदान करती है और पाप-पद्धति को क्षीण करती है, इसलिये तन्त्रशास्त्र में अपने तन्त्र के अर्थ के बलाबलभेद से इसे दीक्षा कहा जाता है।'

दीयते ज्ञानसद्भावः क्षीयते पापसञ्चयः ।
तेन दीक्षेति सा ज्ञेया पाशच्छेदक्षयात् क्रिया ॥

(प्रयोगसार)

'जो ज्ञानपूर्वक सद्भाव को प्रदान करती है और पाप-राशियों को क्षीण करती है तथा पाशों के टुकड़ों को भी नाश करती है। अतः इस क्रिया का नाम दीक्षा है, ऐसा जानना चाहिये।'

दीयते विमलं ज्ञानं क्षीयते कर्मवासना ।
तेन दीक्षेति सा प्रोक्ता मुनिभिस्तन्त्रवेदिभिः ॥
(तन्त्रशास्त्र)

'जो विमल ज्ञान को प्रदान करती है और कर्मवासना को क्षीण करती है, अतएव तन्त्रवेत्ता मुनिगण इसे दीक्षा कहते हैं।'

दिव्यं ज्ञानं यतो दद्यात् कुर्यात्पापस्य संक्षयम् ।
तस्माद्दीक्षेति सा प्रोक्ता देशिकैस्तत्त्वकोविदैः ॥
(रुद्रयामल)

'दीक्षा दिव्य ज्ञान देती है और पापों का क्षय करती है, अतः तत्त्वज्ञ देशिक उसको दीक्षा कहते हैं।'

दिव्यं ज्ञानं ततो दद्यात् कुर्यात्पापक्षयं यतः ।
तस्माद्दीक्षेति सा प्रोक्ता सर्वतन्त्रस्य सम्मता ॥
(विश्वसारतन्त्र)

'दीक्षा दिव्य ज्ञान प्रदान करती है और पापों का क्षय करती है, अतः सर्वशास्त्रसम्मत होने के कारण इसे 'दीक्षा' कहा जाता है।'

ददाति शिवतादात्म्यं क्षिणोति च मलत्रयम् ।
अतो दीक्षेति सम्प्रोक्ता दीक्षातन्त्रार्थवेदिभिः ॥
(रुद्रयामल)

'दीक्षा शिव-तादात्म्य को प्रदान करती है और तीनों मलों का नाश करती है, अतः दीक्षातन्त्र के अर्थ को जाननेवाले इसे दीक्षा कहते हैं।'

मन्त्रमार्गानुसारेण साक्षात्कृत्वेष्टदेवताम् ।
गुरुश्चोद्बोधयेच्छिष्यं मन्त्रदीक्षेति सोच्यते ॥
(प्रयोगसार)

'मन्त्र-मार्ग के अनुसार गुरु अपने इष्ट देवता का साक्षात्कार कर फिर अपने उपदेश द्वारा शिष्य को भी उसका बोध करावे, इसीको मन्त्र-दीक्षा कहते हैं।'

ददाति यस्मादिह दिव्यभावं
मायामले कर्म च संक्षिणोति।
फलं चतुर्वर्गभवं च यस्मात्
तस्मात्तु दीक्षेत्यभिधानमस्याः॥

'दीक्षा इस संसार में दिव्य-भाव को प्रदान करती है तथा माया-मल और दूषित कर्मों को क्षीण करती है। साथ ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों फलों को प्रदान करती है, अतः इसका नाम दीक्षा है।'

दीक्षा-शब्दके कतिपय व्युत्पत्तिजन्य अर्थ

१. **दीक्ष्यतेऽनया शिष्यादिर्बाहुलकात् करणेऽकारः प्रत्ययः।** जिससे शिष्य आदि भक्तवृन्द दीक्षित किये जायँ, उसे दीक्षा कहते हैं।

२. **दीक्षा उपनयनम्।** द्विजातिको यज्ञोपवीत के समय वेदोक्त गायत्री-मन्त्र द्वारा दिये गये उपदेश को दीक्षा कहते हैं।

३. **दीक्षा यज्ञ-विशेषः।** यज्ञ-विशेष को दीक्षा कहते हैं।

४. **दीक्षा व्रत-विशेषः।** व्रत-विशेष को दीक्षा कहते हैं।

५. **दीक्षा नियम-विशेषः।** आत्मशान्ति अथवा मोक्षप्राप्ति के लिये अथवा अन्य किसी विशेष कार्यसिद्धि के लिये जिस नियम-विशेष को ग्रहण किया जाय, उसे दीक्षा कहते हैं।

६. **दीक्षा आदेश-विशेषः।** अपने पूज्य आचार्य, गुरु, पिता आदि गुरुजन के आदेश को दीक्षा कहते हैं।

७. **दीक्षणं दीक्षा।** अर्थात् दीक्षा का कार्य।

दीक्षाके भेद

दीक्षा के अनेक भेद हैं, जिनमें वैदिक, तान्त्रिक और पौराणिक मुख्य हैं।

उपनयन-संस्कार में द्विजाति को वेदोक्त ब्रह्मगायत्री-मन्त्र की जो दीक्षा दी जाती है, उसे 'वैदिक दीक्षा' कहते हैं।

तान्त्रिक-पद्धति के अनुकूल जो तन्त्रोक्त दीक्षा दी जाती है, उसे 'आगम-दीक्षा' कहते हैं।

पौराणिक मन्त्र के द्वारा जो दीक्षा दी जाती है, उसे 'पौराणिक दीक्षा' कहते हैं।

दीक्षाकी आवश्यकता

संस्कृत-साहित्य में दीक्षा का बहुत ही महत्त्व है। सभी शास्त्रकारों ने अपने-अपने धर्मग्रन्थों में दीक्षा की महत्ता और आवश्यकता का उल्लेख करते हुए कहा है कि दीक्षा ही समस्त संसार का और समस्त जप, तप, पूजा, पाठ आदि धार्मिक कृत्यों का मूल कारण है।

दीक्षामूलं जगत्सर्वं दीक्षामूलं परं तपः।
दिव्यं ज्ञानं यतो दद्यात् कुर्यात्पापस्य संक्षयम्॥
(रुद्रयामल)

'यह सम्पूर्ण जगत् दीक्षा-मूलक है और दीक्षा-मूलक ही परम तप भी है। क्योंकि दीक्षा ही दिव्य ज्ञान को देनेवाली है और वह समस्त पापों का नाश करनेवाली है।'

दीक्षामूलं जपं सर्वं दीक्षामूलं परं तपः।
दीक्षामाश्रित्य निवसेत् यत्र कुत्राश्रमे वसन्॥

अदीक्षिता ये कुर्वन्ति जपपूजादिकाः क्रियाः ।
न भवन्ति प्रिये ! तेषां शिलायां न्यस्तबीजवत् ॥
देवि ! दीक्षाविहीनस्य न सिद्धिर्न च सद्गतिः ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन गुरुणा दीक्षितो भवेत् ॥
अदीक्षितोऽपि मरणे रौरवं नरकं व्रजेत् ।
तस्माद्दीक्षां प्रयत्नेन गृह्णीयुः सर्वमानवाः ॥

(रुद्रयामल)

'समस्त जप और तप का मूल दीक्षा ही है, अतः मनुष्य जिस किसी भी आश्रम में रहता हुआ दीक्षा का आश्रय ग्रहण करके ही निवास करे। प्रिये ! जो मनुष्य अदीक्षित रहकर जप-पूजादि कार्य करते हैं, उनके किये हुए कार्य उसी प्रकार निष्फल होते हैं जिस प्रकार पत्थर पर बोये गये बीज निष्फल होते हैं। हे देवि ! दीक्षारहित मनुष्य की न तो सिद्धि होती है और न सद्गति ही होती है। अतः मनुष्य को सभी प्रकार से प्रयत्न कर गुरु से दीक्षा लेनी चाहिये। जो मनुष्य दीक्षाविहीन मरता है, उसे रौरव नरक की प्राप्ति होती है। अतः समस्त मनुष्यों को प्रयत्न कर दीक्षा-ग्रहण करना चाहिये।'

दीक्षा की आवश्यकता समस्त आश्रमों में है। दीक्षा के बिना कोई भी आश्रम सफल नहीं हो सकता। अतः सभी आश्रमवालों को दीक्षा-ग्रहण करना चाहिये। दीक्षा-ग्रहण करने से ही समस्त आश्रमों की मर्यादा सुरक्षित रह सकती है, अन्यथा नहीं।

दीक्षा-ग्रहण करना यह भी एक प्रकार का धार्मिक व्रत है। इस धार्मिक व्रत को धारण करनेवाला मनुष्य ही धार्मिक कहलाता है। धार्मिक मनुष्य ही दीक्षारूपी धार्मिक व्रत के यथार्थ तत्त्व और महत्त्व को जानकर दीक्षा-ग्रहण करता है। दीक्षा-ग्रहण करने के लिये मनुष्य में पूर्वजन्मार्जित पुण्य की विशेष आवश्यकता है। अतः जिस मनुष्य में

पूर्वजन्मार्जित विशेष पुण्य सञ्चित रहते हैं, वही गुरु के द्वारा दीक्षा-ग्रहण करता है—

'अनेकजन्मपुण्योघैर्दीक्षितो जायते नरः ।'

जिस प्रकार अनुपनीत द्विजातियों को वेदाध्ययन और वेदोक्त कर्म आदि करने का अधिकार नहीं है, उसी प्रकार दीक्षा-ग्रहण न करने-वाले अदीक्षितों को भी भगवन्नाम-मन्त्र और देवपूजन आदि करने का अधिकार नहीं है। अतः द्विजाति को गुरु के द्वारा दीक्षा-ग्रहण कर अपने को सुसंस्कृत करना चाहिये।

द्विजानामनुपनेतानां स्वकर्माध्ययनादिषु ।
यथाधिकारो नास्तीह स्याच्चोपनयनादनु ॥
तथाचादीक्षितानां च मन्त्रदेवार्चनादिषु ।
नाधिकारोऽस्त्यतः कुर्यादात्मानं शिवसंस्कृतम् ॥

और भी कहा है—

तथात्रादीक्षितानां तु मन्त्रदेवार्चनादिषु ।
नाधिकारोऽस्त्यतः कुर्यादात्मानं दीक्षितं गुरुम् ॥
(गौतमीयतन्त्र)

'अदीक्षित मनुष्यों का मन्त्र, जप तथा देवार्चनादि में अधिकार नहीं है, अतः किसी को गुरु बना कर अपने को अवश्य दीक्षित करे।'

'जपो देवार्चनविधिः कार्यो दीक्षान्वितै नरैः ।'
(मन्त्रमुक्तावली)

'गुरु के द्वारा दीक्षा-ग्रहण करनेवाले मनुष्यों को ही देवपूजन और भगवन्नाम-मन्त्र का जप करना चाहिये।'

अतः भगवत्पूजन आदि शुभ कार्यों के अधिकारार्थ प्रत्येक मनुष्य को भगवन्नाम-मन्त्र की दीक्षा-ग्रहण करना चाहिये। जो मनुष्य भगवन्नाम मन्त्र की दीक्षा-ग्रहण करता है वह नर से नारायण बन जाता है।

'मन्त्रग्रहणमात्रेण नरो नारायणो भवेत्।'

(नारदपञ्चरात्र, द्वितीय रात्रि, तृतीय अध्याय)

'भगवन्मन्त्र के ग्रहण-मात्र से ही मनुष्य नर से नारायण बन जाता है।'

मन्त्रग्रहणमात्रेण नरो नारायणात्मकः।
पुनाति लीलामात्रेण पुरुषाणां शतं शतम्॥

'भगवन्नाम-मन्त्र लेनेवाला मनुष्य नारायणस्वरूप हो जाता है और वह मन्त्र-ग्रहण कर अपनी सैकड़ों पीढ़ियों का उद्धार कर देता है।'

तन्त्रशास्त्र की मान्यता है कि भगवन्नाम-दीक्षा-ग्रहण प्राप्त करने पर ही मनुष्य को द्विजत्व की प्राप्ति होती है—

यथा काञ्चनतां याति कांस्यं रसविधानतः।
तथा दीक्षाविधानेन द्विजत्वं जायते नृणाम्॥

(वैष्णवतन्त्र)

'जिस प्रकार कांसे के ऊपर रस का प्रयोग करने पर वह सुवर्ण बन जाता है, उसी प्रकार दीक्षा-ग्रहण करने से मनुष्य द्विजत्व को प्राप्त करते हैं।'

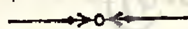
जिस प्रकार दीक्षा-ग्रहण से मनुष्य को इहलोक में द्विजत्व की प्राप्ति होती है, उसी प्रकार दीक्षा-ग्रहण से वर्ण-चतुष्टय को मृत्यु के अनन्तर परलोक में भी विशिष्ट लोक की प्राप्ति होती है।

दीक्षितो ब्राह्मणो याति ब्रह्मलोकं सुधामयम्।
ऐन्द्रं लोकं क्षत्रियोऽपि प्राजापत्यं विशस्तथा।

गन्धर्वनगरं याति शूद्रो दीक्षाप्रसादतः ॥

'गुरु से दीक्षा लेने के प्रभाव से ब्राह्मण अमृतमय ब्रह्मलोक की, क्षत्रिय इन्द्रलोक की, वैश्य प्रजापति लोक की और शूद्र गन्धर्वलोक की प्राप्ति करता है।'

अतः स्पष्ट है कि दीक्षा-ग्रहण का महत्त्वपूर्ण फल ऐहलौकिक ही नहीं, किन्तु पारलौकिक भी है। इसलिये मनुष्यमात्र को आत्म-कल्याणार्थ श्रद्धा–भक्तिपूर्वक सद्गुरु के द्वारा दीक्षा-ग्रहण कर अपना जीवन उज्ज्वल और सफल बनाना चाहिये। जो मनुष्य महत्त्वपूर्ण दीक्षा-ग्रहण से वञ्चित रहते हैं, वे भाग्यहीन, निन्दनीय और अधम हैं।



दीक्षारहित मनुष्य दोषी और निन्दनीय है

अदीक्षितानां मर्त्यानां दोषं शृण्वन्तु साधकाः ।
अन्नं विष्ठासमं ज्ञेयं जलं मूत्रसमं तथा ॥
अदीक्षितकृतं श्राद्धं श्राद्धं चादीक्षितस्य च ।
गृहीत्वा पितरस्तस्य नरके चाशु दारुणे ॥
पतन्त्येव न सन्देहो यावदिन्द्राश्चतुर्दश ।
तथाऽप्यदीक्षितस्यार्चा न देवा गृह्णन्ति नैव हि ॥
तस्माददीक्षितं दृष्ट्वा सचैलं स्नानमाचरेत् ।
दीक्षाग्रहणकाले तु पापराशिः प्रलीयते ॥
निर्वाणपदसंयुक्तो बहिर्गच्छति तत्परः ।
सर्वाश्रमेषु दीक्षाया नित्यत्वं परिचक्षते ॥
अनीश्वरस्य मर्त्यस्य नास्ति त्राता सुरेश्वरि ।

तथा दीक्षाविहीनस्य नेह त्राता परत्र च ॥
न तपोभिर्जपैर्होमैरुपचारैश्च साधनैः ।
अदीक्षितश्च मरणे रौरवं नरकं व्रजेत् ॥
तस्माद्दीक्षां प्रयत्नेन गृह्णीयादागमान्मुदा ।

(रुद्रयामल)

'हे साधको ! अदीक्षित मनुष्यों के दोषों को सुनो । अदीक्षितों का अन्न विष्ठा के समान तथा जल मूत्र के समान होता है। अदीक्षित पुरुष के किये हुए श्राद्ध को ग्रहण करके उसके पितर लोग चतुर्दश इन्द्रों के समय तक घोर नरक में पड़े रहते हैं। अदीक्षित पुरुष की पूजा देवता स्वीकार नहीं करते, अतः अदीक्षित पुरुष को देखकर सचैल (सवस्त्र) स्नान करना चाहिये। दीक्षा-ग्रहण के समय में ही पाप-राशि का नाश हो जाता है। अतः दीक्षित पुरुष मोक्षाधिकारी हो जाता है। सब आश्रमों में दीक्षा ही नित्य बतलायी गयी है। हे सुरेश्वरि ! जैसे ईश्वर को न माननेवाले नास्तिक पुरुष की कोई रक्षा नहीं कर सकता, वैसे ही दीक्षाविहीन पुरुष की इस लोक में तथा परलोक में कोई रक्षा नहीं कर सकता। तप, जप, होमादि तथा और साधनों के द्वारा अदीक्षित पुरुष अपनी रक्षा नहीं कर सकता। अदीक्षित पुरुष मरने पर घोर नरक में जाता है, अतः प्रयत्नपूर्वक पुरुष को आगमोक्त विधि से दीक्षा लेनी चाहिये।'

अथ दीक्षाविहीनो हि वर्त्तते भुवि पापभुक् ।
मोहान्धकारे नरके गर्ते पतति दुःखितः ॥
अनीश्वरस्य मर्त्यस्य नास्ति त्राता यथा भुवि ।
तथा दीक्षाविहीनस्य नेह स्वामी परत्र च ॥

(दत्तात्रेयामल)

'जो मनुष्य दीक्षाविहीन है, वह इस संसार में पाप भोगता है और मोहान्धकाररूपी गर्त (गड्ढे) में गिरकर दुःख पाता है। जिस प्रकार ईश्वर को न माननेवाले नास्तिक की इस संसार में कोई रक्षा नहीं कर सकता, उसी प्रकार दीक्षारहित मनुष्य को परलोक में भी कोई स्वामी रक्षा नहीं कर सकता।'

उपर्युक्त अनेक प्रमाणों से स्पष्ट है कि जो मनुष्य दीक्षा-ग्रहण नहीं करते, उनके किये हुए श्राद्ध, देवपूजनादि को देवता स्वीकार नहीं करते। अतः ऐसे मनुष्यों की न तो इस लोक में रक्षा होती है और न परलोक में ही रक्षा होती है। इसलिये सभी मनुष्यों को दीक्षा-ग्रहण करना चाहिये।

गृहस्थको गृहस्थ ही दीक्षा देनेका अधिकारी है

वेदादि समस्त शास्त्रों में **'ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्'** (शुक्लयजुर्वेद ३१।११), **'ब्राह्मणो मामकी तनुः'** (वामनपुराण ६५।८), **'वर्णानां ब्राह्मणः प्रभुः'** (मनुस्मृति १०।३) इत्यादि वचनों के द्वारा ब्राह्मणों का विशेष महत्त्व कहा गया है। ब्राह्मणों के विशिष्ट महत्त्व के कारण ही सभी शास्त्रकारों ने ब्राह्मणों को 'जगद्गुरु' की उपाधि प्रदान की है। अतएव जगद्गुरु ब्राह्मण को चारों वर्णों का 'गुरु' कहा गया है—

वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः। (पद्मपुराण , स्वर्गखण्ड ५२।५१)
वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः। (ब्रह्मवैवर्तपुराण, गौतमीमाहात्म्य १०।४७)

वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः। (ब्रह्मपुराण ८०।४७)
वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः। (चाणक्यनीति ५।१)

[1]ब्राह्मणो वै गुरुर्नृणाम् (हरिभक्तिविलास)

ब्राह्मणाः सर्ववर्णानां गुरुरेव द्विजोत्तम। (पद्मपुराण, ब्रह्मखण्ड १४।२)

गुरुर्हि सर्ववर्णानां ज्येष्ठः श्रेष्ठश्च वै द्विजः। (महाभारत, शान्ति-पर्व ७२।११)

सृष्टिकर्ता ब्रह्मा ने ब्राह्मण में ही गुरुत्व की स्थापना की है, अन्य वर्णों में नहीं की। अतः ब्राह्मण ही चारों वर्णों के गुरु बनने के अधिकारी हैं। इसलिये चारों वर्णों को उचित है कि वे ब्राह्मण को ही अपना गुरु बनावें।

विप्रो विप्रेतरगुरुर्न विप्रो जायते ध्रुवम्।
न च विप्रेषु पूजार्हस्तस्माद् विप्रं गुरुं चरेत्॥

(कौशिकसंहिता)

'ब्राह्मण ब्राह्मण से इतर वर्ण का अर्थात् क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और ब्राह्मण का भी गुरु हो सकता है। निश्चय ही ब्राह्मणेतर किसी का गुरु नहीं हो सकता और न वह ब्राह्मणों के मध्य में पूजा के योग्य हो सकता है। अतः ब्राह्मण को ही गुरु बनाना चाहिये।'

धर्माचार्यों ने समस्त वर्णों में गृहस्थ ब्राह्मण को ही श्रेष्ठ गुरु कहा है—

'गृहस्थः सर्ववर्णेषु श्रेष्ठो गुरुरुदाहृतः।'

(सिद्धान्तशेखर)

'सर्वशास्त्रार्थवेत्ता च गृहस्थो गुरुरुच्यते।'

(ज्ञानार्णवे, कुलार्णवे च)

---

१. महाभागवतश्रेष्ठो ब्राह्मणो वै गुरुर्नृणाम्।
सर्वेषामेव लोकानामसौ पूज्यो यथा हरिः॥

(हरिभक्तिविलास)

'महाभागवत अर्थात् भगवद्भक्त होने के कारण श्रेष्ठ ब्राह्मण ही मनुष्यों का गुरु है, अतः वह समस्त जनों से हरि (भगवान्) के सदृश ही पूज्य है।'

'समस्त शास्त्रों के अर्थ का ज्ञाता ही गुरु कहलाता है।'

उद्धर्तुं चैव संहर्त्तुं समर्थो ब्राह्मणोत्तमः।
तपस्वी सत्यवादी च गृहस्थो गुरुरुच्यते॥

(शैवाचारप्रदीपिका २।१५, आगमसंहिता)

'तपस्वी, सत्यवादी तथा गृहस्थ उत्तम ब्राह्मण ही सभी का उद्धार तथा संहार करने में समर्थ होने के कारण गुरु कहा जाता है।'

कलत्रपुत्रवान् विप्रो दयालुः सर्वसम्मतः।
दैवे पित्रेऽरिमित्रे च गृहस्थो देशिको भवेत्॥

(यामले)

'देवकार्य तथा पितृकार्य में स्त्री-पुत्र-सम्पन्न दयालु और सद्गृहस्थ ब्राह्मण ही सर्वसम्मत से पूजा के योग्य है। क्योंकि वह शत्रु और मित्र दोनों को उपदेश देने में समर्थ होता है।'

गृहस्थानां गुरुर्गृही। (तन्त्ररत्नाकर)

'गृहस्थों का गुरु गृहस्थ ही हो सकता है।'

अतः स्पष्ट है कि गृहस्थ को दीक्षा देने का अधिकार गृहस्थ ब्राह्मण को ही है, साधु, सन्यासी आदि को नहीं। इसलिये गृहस्थको गृहस्थ ब्राह्मण से ही दीक्षा लेनी चाहिये, साधु, संन्यासी आदि से नहीं।

भिक्षुभ्यश्च वनस्थेभ्यो वर्णिभ्यश्च महेश्वरि।
गृहस्थो भोगमोक्षार्थी मन्त्रदीक्षां न चाचरेत्॥

(त्रिपुरारहस्य)

'हे देवि! भोग और मोक्ष को चाहनेवाले गृहस्थ भिक्षुकों, वनवासियों और ब्रह्मचारियों से मन्त्रदीक्षा ग्रहण न करें।'

जो गृहस्थ अज्ञानवश साधु, संन्यासी, वनवासी आदि से दीक्षा लेते हैं, उनका कल्याण नहीं होता, यह स्पष्ट लिखा है—

यतेर्दीक्षा पितुर्दीक्षा या दीक्षा वनवासिनः।
विविक्ताश्रमिणो दीक्षा न सा कल्याणदायिका ॥

(गणेशविमर्षिणी)

'यति (संन्यासी), पिता, वनवासी और विविक्ताश्रमी (संसार-त्यागी) से जो दीक्षा ली जाती है, वह कल्याणदायिनी नहीं होती।'

पितुर्दीक्षा यतेर्दीक्षा दीक्षा च वनवासिनः।
अनाश्रमाणां या दीक्षा सा दीक्षा दुःखदायिनी॥

(ताराकल्पतन्त्र)

'पिता से, यति (संन्यासी) से, वनवासी से और आश्रम-विहीनों से जो दीक्षा ली जाती है, वह दुःखदायिनी होती है।'

अतः जो गृहस्थ साधु, संन्यासी आदि से दीक्षा लेते हैं, वे घोर पाप और नरक के भागी होते हैं। इसलिये गृहस्थ को भूलकर भी साधु, संन्यासी, वनवासी, भिक्षुक आदि से दीक्षा नहीं लेनी चाहिये। जो मनुष्य अज्ञानवश संन्यासी से दीक्षा ग्रहण करते हैं, वे प्रायश्चित्ती हो जाते हैं। अतः प्रायश्चित्ती मनुष्यों को प्रायश्चित्त कर पुनः दूसरे सुयोग्य गृहस्थ ब्राह्मण से दीक्षा ग्रहण करने के लिये स्पष्ट लिखा है—

यतेर्दीक्षां गृहीत्वा तु कदाचिदपि मोहितः।
प्रायश्चित्तं धेनुरेकां त्रिरात्रव्रतमेव च ॥
प्रायश्चित्तं ततः कृत्वा पुनर्दीक्षां समाचरेत् ॥

(तन्त्रराज)

'यदि किसी ने कभी अज्ञानवश यति से दीक्षा ले ली हो, तो उसे प्रायश्चित्तरूप से एक गोदान और तीन रात्रि तक व्रतोपवास करना चाहिये। इस प्रकार प्रायश्चित्त करने के बाद मनुष्य को पुनः दूसरे गृहस्थ गुरु से दीक्षा लेनी चाहिये।'

जिस प्रकार संन्यास-ग्रहण के समय मनुष्य को संन्यास-दीक्षा के

लिये संन्यासी को ही अपना गुरु बनाना आवश्यक होता है, उसी प्रकार गृहस्थको दीक्षा-ग्रहण के समय गृहस्थी को ही अपना गुरु बनाना आवश्यक है। यही नियम वानप्रस्थी के लिये भी कहा गया है। अतएव शास्त्रकारों ने प्रत्येक आश्रम अथवा प्रत्येक सम्प्रदाय के मनुष्य के लिये पृथक्-पृथक् आश्रम अथवा सम्प्रदाय में पृथक्-पृथक् गुरु बनाने का निर्देश किया है। इसलिये प्रत्येक आश्रम अथवा सम्प्रदायवाले को अपने आश्रम अथवा सम्प्रदाय का ही गुरु बनाना चाहिये।

उदासीनो ह्युदासीनां वनस्थो वनवासिनः।
यतीनां च यतिः प्रोक्तो गृहस्थानां गुरुर्गृही॥

(तन्त्ररत्नाकर)

'उदासीनों का उदासीन, वनवासियों का वनवासी, यतियों का यति तथा गृहस्थों का गृहस्थ ही गुरु कहा गया है।'

गृहस्थानां गृहस्थो वै यतीनां तु यतिर्भवेत्।
भिन्नाश्रमी गुरुस्त्याज्यः सर्वसाधारणश्च यः॥

(कल्पचिन्तामणि)

'गृहस्थों का गृहस्थ और यतियों का यति गुरु हो सकता है। जो भिन्न आश्रमवाला सर्वसाधारण गुरु है, वह भी त्याज्य है।'

अतः प्रत्येक आश्रम अथवा सम्प्रदाय के मनुष्य को अपने-अपने आश्रमवाले को ही गुरु बनाना चाहिये, भिन्न आश्रमवाले को गुरु नहीं बनाना चाहिये।

सुप्रसिद्ध विद्वान् श्रीयुत डाक्टर नीरजाकान्त चौधुरी एम्०ए०, एल्० एल्० बी, पी० एच्० डी० महोदय ने भी 'कल्याण' मासिक पत्र के विशेषाङ्क 'उपासना-अङ्क' (पृष्ठ ५२६) में लिखा है कि—'आजकल अकस्मात् प्राप्त हुए जिस किसी संन्यासी को गुरु बनाने का नया प्रचलन चल गया है। संन्यासी को तो अधिकार ही नहीं है कि वह गृहस्थ को या स्त्रीजन को दीक्षा प्रदान करे।'

पिता आदिसे दीक्षा-ग्रहणका निषेध

[१]पितुर्मन्त्रं न गृह्णीयात्तथा मातामहादपि ।
सोदरस्य कनिष्ठस्य वैरिपक्षाश्रितस्य च ॥
प्रमादाद्वा तथाऽज्ञानात् पितुर्दीक्षां समाचरेत् ।
[२]प्रायश्चित्तं ततः कुर्यात् पुनर्दीक्षां समाचरेत् ॥

(ताराकल्पतन्त्र, योगिनीतन्त्र, गणेशविमर्षिणी)

'पिता से, नाना से, छोटे भाई से और शत्रुपक्ष में रहनेवाले से मन्त्र-दीक्षा नहीं लेनी चाहिये। यदि प्रमादवश अथवा अज्ञानवश किसी ने पिता से दीक्षाग्रहण कर ली हो तो वह प्रायश्चित्त कर पुनः दीक्षा-ग्रहण करे।'

[३]न पत्नीं दीक्षयेद् भर्ता न पिता दीक्षयेत्सुताम् ।
न पुत्रं च तथा भ्राता भ्रातरं न च दीक्षयेत् ॥

(रुद्रयामल)

---

१. निर्वीर्यं तु पितुर्मन्त्रं तथा मातामहस्य च । (योगिनीतन्त्र)
'पिता और नाना से लिया हुआ मन्त्र निर्वीर्य (तत्त्वहीन) होता है।'

२. प्रायश्चित्तं त्वयुतसावित्रीजपः ।

३. 'न पत्नीं दीक्षयेद् भर्ता' (रुद्रयामल) के अनुसार पति अपनी पत्नी को दीक्षा देने का अधिकारी नहीं है, किन्तु यदि वह सिद्धमन्त्र हो तो अपनी पत्नी को दीक्षा प्रदान कर सकता है।

'सिद्धमन्त्रो यदि पतिस्तदा पत्नीं स दीक्षयेत् ।' (रुद्रयामल)

आज के युग में सिद्धमन्त्र होना अत्यन्त कठिन है। मन्त्र सिद्ध करने के लिये मनुष्य में पूर्वजन्मार्जित पुण्य, त्याग तथा तप की विशेष आवश्यकता है। इनकी प्राप्ति ईश्वर की कृपा से ही सम्भव है।

'पति पत्नी को, पिता कन्या और पुत्र को तथा भाई अपने भाई को दीक्षा प्रदान न करे।'

पितुर्दीक्षा यतेर्दीक्षा दीक्षा च वनवासिनः।
अनाश्रमाणां या दीक्षा सा दीक्षा दुःखदायिनी॥
(ताराकल्पतन्त्र)

'पिता से, यति (संन्यासी) से, वनवासी से और आश्रमविहीनों से जो दीक्षा ली जाती है, वह दुःखदायिनी होती है।'

भिक्षुभ्यश्च वनस्थेभ्यो वर्णिभ्यश्च महेश्वरि।
गृहस्थो भोगमोक्षार्थी मन्त्रदीक्षां न चाचरेत्॥
(त्रिपुरारहस्य)

'हे देवि! भोग और मोक्ष को चाहनेवाले गृहस्थ भिक्षुकों, वनवासियों और ब्रह्मचारियों से मन्त्रदीक्षा ग्रहण न करें।'



पतिसे पत्नीको दीक्षा-ग्रहणका निषेध

जिस प्रकार पुरुष के लिये दीक्षा-ग्रहण आवश्यक है, उसी प्रकार स्त्री के लिये भी दीक्षा-ग्रहण आवश्यक है। स्त्री को अपने पति से दीक्षा-ग्रहण करना चाहिये अथवा अन्य किसी विद्वान् से दीक्षा-ग्रहण करना चाहिये, यह प्रश्न उपस्थित होता है। इसका उत्तर शास्त्रकारों ने स्पष्ट लिखा है कि स्त्री को अपने पति से दीक्षा-ग्रहण नहीं करना चाहिये।

'पत्युर्मन्त्रं पितुर्मन्त्रं न गृह्णीयात् कदाचन।'
(भविष्यपुराण)

'स्त्री अपने पति और पिता से कदापि मन्त्र-ग्रहण न करे।'

पति के लिये भी लिखा है कि वह अपनी पत्नी को मन्त्र-दीक्षा कदापि न दे—

न पत्नीं दीक्षयेद् भर्ता न पिता दीक्षयेत्सुताम् ।
न पुत्रं च तथा भ्राता भ्रातरं न च दीक्षयेत् ॥

(रुद्रयामल)

'पति पत्नी को, पिता कन्या और पुत्र को तथा भाई भाई को दीक्षा प्रदान न करे।'

अतः स्पष्ट है कि पत्नी अपने पति से गुरुमन्त्र-ग्रहण न करे और पति अपनी पत्नी को गुरुमन्त्र प्रदान न करे। जो पत्नी अज्ञानवश अपने पति से गुरु-मन्त्र-ग्रहण करती है, वह दोष की भागिनी बनती है और जो पति अपनी पत्नी को गुरुमन्त्र प्रदान करता है, वह भी दोष का भागी बनता है।

'पतिरेव गुरुः स्त्रीणाम्' (ब्रह्मपुराण ८०।८७), **'पतिरेको गुरुः स्त्रीणाम्'** (शातातपस्मृति) इत्यादि वचनों के अनुसार कुछ लोगों का कहना है कि 'स्त्रियों का गुरु पति ही होता है अथवा स्त्रियों का एक पति ही गुरु होता है।'

जिन ऋषि-महर्षियों के प्रमाणों के आधार पर यह सिद्ध किया जाता है कि स्त्रियों का केवल पति ही गुरु हो सकता है, दूसरा नहीं हो सकता, उन्हीं ऋषि-महर्षियों ने स्त्रियों के लिये यह भी तो लिखा है—

पतिर्हि देवता नार्याः पतिर्बन्धुः पतिर्गुरुः ।

(वाल्मीकिरामायण ७।४८।१७)

पतिर्हि देवो नारीणां पतिर्बन्धुः पतिर्गुरुः ।

(महाभारत, अनुशासनपर्व १४६।५५)

पतिर्हि दैवतं स्त्रीणां पतिरेव परायणम् ।

(मत्स्यपुराण २१०।१७)

पतिर्बन्धुर्गतिर्भर्ता दैवतं गुरुरेव च ।

(ब्रह्मवै० पु०, कृष्णजन्मखण्ड, उत्तरार्ध ५७।१०)

भर्ता नाथो गुरुर्भर्ता दैवतं गुरुरेव च ।

(बृहन्नारदीयपुराण, उत्तरभाग ४।४०)

भर्ता देवो गुरुर्भर्ता धर्मतीर्थव्रतानि च ।

(स्कन्दपुराण, काशीखण्ड ४।४८)

भर्ता नाथो गुरुर्भर्ता देवता दैवतैः सह ।
भर्ता तीर्थं च पुण्यं च नारीणां नृपनन्दन ॥

(पद्मपुराण, भूमिखण्ड ४१।७५)

पतिर्ब्रह्मा पतिर्विष्णुः पतिर्देवो महेश्वरः ।
पतिर्गुरुः पतिस्तीर्थमिति स्त्रीणां विदुर्बुधाः ॥

(स्कन्दपुराण, वैशाखमाहात्म्य २६।८४)

'पतिरेव गुरुः स्त्रीणाम्' के अनुसार जिस प्रकार स्त्री का पति ही गुरु हो सकता है, दूसरा गुरु नहीं हो सकता, उसी प्रकार **'पतिर्हि देवता नार्याः पतिर्बन्धुर्पतिर्गतिः'**, **'भर्ता देवो गुरुर्भर्ता धर्मतीर्थव्रतानि च'**, **'भर्ता नाथो गुरुर्भर्ता दैवतं गुरुरेव च'**, **'भर्ता तीर्थं च पुण्यंच भर्ता च परमेश्वरः'**, **'पतिर्ब्रह्मा पतिर्विष्णुर्पतिर्देवो महेश्वरः'** इत्यादि प्रमाणों के अनुसार स्त्रियों का पति ही देवता, पति ही बन्धु, पति ही गति, पति ही गुरु, पति ही धर्म, पति ही तीर्थ, पति ही व्रत, पति ही स्वामी, पति ही पुण्य, पति ही परमेश्वर, पति ही ब्रह्मा, पति ही विष्णु और पति ही महेश्वर है। अतः स्त्रियों को अपने पति को ही देवता, बन्धु, गति, धर्म, तीर्थ, व्रत, स्वामी, पुण्य, परमेश्वर, ब्रह्मा, विष्णु और

महेश्वर समझना चाहिये। देवता, तीर्थ, व्रत, धर्म, पुण्य, परमेश्वर; ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर को न मान कर पति को ही सब कुछ मानना चाहिये। क्योंकि स्त्रियों के लिये पति ही गुरु आदि सब कुछ है।

'पतिरेव गुरुः स्त्रीणाम्', 'पतिर्हि देवता नार्याः', 'पतिर्ब्रह्मा पतिर्विष्णुर्पतिर्देवो महेश्वरः' इत्यादि वाक्यों द्वारा स्त्रियों को पति के महत्त्व और वैशिष्ट्य को बतलाते हुए कहा गया है कि—जिन स्त्रियों का विवाह हो चुका है, उनके लिये पति ही गुरु, पति ही देवता, पति ही ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर और सब कुछ हैं। अतः विवाहित स्त्रियों को जीवनपर्यन्त पति की आज्ञा से ही देवपूजन, व्रत, तीर्थ, दान, पुण्य आदि कार्य करने चाहिये। अतएव भगवान् मनु ने भी लिखा है—

'नास्ति स्त्रीणां पृथग्यज्ञो न व्रतं नाप्युपोषणम्।'

(मनुस्मृति ५।१५५)

'स्त्रियों को पति की आज्ञा के बिना पृथक् रूप से यज्ञ, व्रत और उपवास करने का अधिकार नहीं है।'

शिवपुराण (उत्तरखण्ड) में भी कहा है—

नाधिकारः स्वतो नार्याः शिवपूजनकर्मणि।
नियोगाद्भर्तुरस्त्येव भक्तियुक्ता यदीश्वरे॥

'भगवान् शिव की पूजा करने में स्त्रियों का स्वतः अधिकार नहीं है। यदि शिव की भक्ति हो तो उन्हें पति की आज्ञा से ही शिवपूजा का अधिकार प्राप्त हो सकता है।'

अतः स्पष्ट है कि स्त्रियों को अपने पति की आज्ञानुसार ही प्रत्येक कार्य करना चाहिये।

जो स्त्री ऋषि-महर्षिप्रणीत शास्त्रों में विश्वास रखकर दीक्षा-ग्रहण को मुक्ति का साधन समझती है और मुक्ति की प्राप्ति के लिये

किसी सुयोग्य गुरु के द्वारा दीक्षा-ग्रहण करना चाहती है, उसे पति की आज्ञा प्राप्त करके ही दीक्षा-ग्रहण करना चाहिये।

'पतिरेव गुरुः स्त्रीणाम्' का वस्तुतः अभिप्राय यह है कि स्त्रियों के लिये समस्त गुरुओं की अपेक्षा पति को ही सर्वश्रेष्ठ गुरु कहा गया है। अतः स्त्रियाँ पति को ही गुरुरूप में मानें। स्त्रियों के लिये पति को गुरु मानने का अभिप्राय यह है कि उसके द्वारा स्त्रियों को भगवत्प्राप्ति सुविधा से हो सकती है। क्योंकि पति ही स्त्री के लिये यथार्थ मार्ग-दर्शक है। अतः स्त्री को पति की आज्ञानुसार ही कार्य करना चाहिये। जो स्त्री पति की आज्ञानुसार कार्य करती है, उसको ही भगवत्प्राप्ति होती है।

स्त्री के लिये पति को ही गुरु मानने के लिये जो कहा गया है, इसका यह अभिप्राय नहीं है कि पति अपने को गुरु माने और स्त्री को शिष्या। वस्तुतः देखा जाय तो पति अपनी स्त्री का गुरु कथमपि नहीं हो सकता। क्योंकि विवाह-संस्कार में पुरुष स्त्री को अर्द्धाङ्गिनी (सह-धर्मिणी) के रूप में स्वीकार करता है। अतः स्त्री विवाह के बाद अपने पति की अर्द्धाङ्गिनी बन जाती है। अर्द्धाङ्गिनी स्त्री का अपने पति के साथ जीवनपर्यन्त के लिये कामसम्बन्ध अर्थात् रतिसम्बन्ध बन जाता है। पति और पत्नी का कामसम्बन्ध होने से दोनों में पर-स्पर गुरु और शिष्यभाव की सात्त्विक भावना ही जागृत नहीं हो सकती। गुरु और शिष्य बनने के लिये गुरु और शिष्य में परस्पर सात्त्विक भावना एवं श्रद्धा-भक्ति की विशेष आवश्यकता है। पति का पत्नी के साथ पुत्रोत्पादनार्थ कामसम्बन्ध होने के कारण पत्नी की अपने पति में स्वभावतः गुरु-रूप में मान्यता नहीं हो सकती। अतः वह अपने पति को गुरु बनाने में कभी भी श्रद्धान्वित होकर प्रवृत्त नहीं हो सकती। इसलिये धार्मिक दृष्टि से अथवा सभी दृष्टियों से पति अपनी पत्नी का गुरु नहीं हो सकता।

पति और पत्नीको एक ही गुरुसे दीक्षा-ग्रहण करना चाहिये

विवाह अत्यन्त पवित्र धार्मिक संस्कार है। इस धार्मिक संस्कार में पति और पत्नी का जीवनपर्यन्त तक के लिये धर्म-बन्धन हो जाता है। अतएव विवाह-संस्कार के समय अग्नि के साक्ष्य में पति और पत्नी आपस में प्रतिज्ञा करते हैं कि 'आज से जीवनपर्यन्त हम दोनों सहमत होकर ही धर्मानुष्ठानादि समस्त कार्यों को करेंगे। अतः पति और पत्नी को अपनी की हुई प्रतिज्ञा के अनुसार जीवनपर्यंन्त प्रत्येक कार्य को सहमत होकर ही करना चाहिये।

पति और पत्नी के लिये दीक्षा-ग्रहण भी एक महान् धार्मिक कृत्य है। इस धार्मिक कृत्यको करने के लिये पति और पत्नी को सहमत होकर एक ही गुरु से दीक्षा-ग्रहण करना उचित है। शास्त्रकारों की भी आज्ञा है कि जिस गुरु से पति ने दीक्षा-ग्रहण किया है, उसीसे पत्नी को भी दीक्षा-ग्रहण करना चाहिये।

'भर्तुर्गुरोः सकाशाद्वा गृह्णीयाद् भक्तिसंयुता।'

(चिदम्बररहस्य)

'पत्नी भक्तिभाव से परिपूर्ण होकर अपने पति के गुरु से ही दीक्षा-ग्रहण करे।'

जो स्त्री अज्ञानवश अपने पति के गुरु के अतिरिक्त अन्य गुरु को मानती है अथवा उनसे दीक्षा-ग्रहण करती है, वह धर्ममार्ग से च्युत होकर नरक में जाती है।

यस्मात् पत्युश्च वामाङ्गं पत्नीति श्रुतयो जगुः।
तस्मात्पतिश्च पत्नी च गुरुमेकं समाश्रयेत्॥
अज्ञानाद्वा गुरुं याऽन्यं कुरुते दैवतं तथा।
सा नारी च्यवते धर्मान्नरकं चाधिगच्छति॥

(त्रिपुरारहस्य)

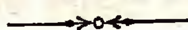
'श्रुतियों ने पत्नी को पति का वामाङ्ग कहा है, अतः पति और पत्नी दोनों को एक ही गुरु का आश्रय ग्रहण करना चाहिये। जो नारी अज्ञानवश अपने पति के गुरु और देवता के अतिरिक्त अन्य गुरु और देवता को मानती है, वह धर्मपथ से च्युत हो जाती है और नरक में जाती है।'

अतः पति और पत्नी का एक ही गुरु और एक ही देवता होना चाहिये।

कुछ लोगों का कहना है कि 'पति और पत्नी को एक ही गुरु से दीक्षा-ग्रहण नहीं करना चाहिये। पति और पत्नी यदि एक ही गुरु से दीक्षा-ग्रहण करेंगे, तो उनका परस्पर भाई और बहन का नाता स्थिर हो जायगा।' जिन लोगों का यह कहना है, उनका कथन सर्वथा निर्मूल और अशास्त्रीय है।

यह सर्वविदित है कि महर्षि वसिष्ठजी भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के परिवार के 'कुलगुरु' थे। अतः भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का समस्त परिवार महर्षि वसिष्ठ का शिष्य था।

महर्षि वसिष्ठ जी महान् त्यागी और तपस्वी थे। उनके द्वारा कभी शास्त्रविरुद्ध कार्य नहीं हो सकता था। अतः महर्षि वसिष्ठजी द्वारा भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के समस्त परिवार को दीक्षा प्रदान करना सिद्ध करता है कि एक ही गुरु से पति और पत्नी, पिता और पुत्र आदि समस्त परिवार दीक्षा-ग्रहण कर सकता है। इसलिये सभी को महर्षि वसिष्ठजी के द्वारा अनुमोदित और प्रदर्शित मार्ग का अनुसरण करना चाहिये—**'महाजनो येन गतः स पन्थाः।'**



स्त्री और शूद्र आचार्य (गुरु) नहीं हो सकते

न जातु मन्त्रदा नारी न शूद्रो नान्तरोद्भवः।
नाऽभिशस्तो न पतितः कामकामोऽप्यकामिनः॥

[1]स्त्रियः शूद्रादयश्चैव बोधयेयुर्हिताऽहितम् ।
यथार्थं माननीयाश्च नार्हन्त्याचार्यतां क्वचित् ॥
(नारदपञ्चरात्र, भारद्वाजसंहिता १।४३-४४)

'स्त्री कभी भी मन्त्रोपदेश नहीं कर सकती और शूद्र, वर्णशङ्कर, कलङ्कित, पतित, विषयी तथा संसार से विरक्त निष्कामी पुरुष—ये सभी मन्त्रोपदेष्टा आचार्य (गुरु) नहीं हो सकते। स्त्री और शूद्र आदि भी हित और अहित का यथोचित बोधन करावें, तो वह मान्य हो सकता है, किन्तु वे कभी भी आचार्य होने के योग्य नहीं हैं।'

'शूद्राणां च तथा स्त्रीणां न गुरुत्वं कदाचन ।'
(सूतसंहिता)

'शूद्रों और स्त्रियों को गुरु बनाने का कथमपि अधिकार नहीं है।'

सिद्धमन्त्रार्थतत्त्वज्ञा स्त्री भी स्त्रियोंको दीक्षा दे सकती है

कुछ परिवार में सौभाग्यवती स्त्री से सौभाग्यवती स्त्रियों में दीक्षा-ग्रहण करने की कुलप्रथा है। जिस परिवार में स्त्रियों से दीक्षा-ग्रहण की कुलप्रथा है, उस परिवार में कुलप्रथा के अनुसार सौभाग्यवती सास आदि स्त्रियों से उनकी पुत्रवधू आदि स्त्रियाँ दीक्षा-ग्रहण कर देवाराधनादि शुभ कर्म करने की अधिकारिणी बन जाती हैं। जो पुत्रवधू अपनी सास आदि से दीक्षा-ग्रहण नहीं करती, वह देवाराधनादि शुभकर्म करने के सर्वथा अयोग्य मानी जाती है। अतः विवाह

१. स्त्रियः शूद्रादयश्चापि बोधनीया हिताऽहितम् ।
तथार्हा माननीयाश्च नार्हन्त्याचार्यकं क्वचित् ॥ (योगिनीतन्त्र)

के बाद पुत्रवधू अपनी ससुराल में जब सर्वप्रथम आती है, तब उसके लिये अपनी सौभाग्यवती सास आदि से दीक्षा-ग्रहण करना आवश्यक हो जाता है।

मन्त्र-दीक्षा देनेवाली स्त्री को सर्वमन्त्रार्थतत्त्वज्ञा, सदाचारिणी और सौभाग्यवती आदि सद्‌गुणों से सुसम्पन्न होना चाहिये। जिस स्त्री में उक्त सद्‌गुण हों, वही गुरु होने के योग्य कही गयी है।

साध्वी चैव सदाचारा गुरुभक्ता जितेन्द्रिया।
सर्वमन्त्रार्थतत्त्वज्ञा सुशीला पूजने रता॥
गुरुयोग्या भवेत्सा हि विधवा परिवर्जिता।
स्त्रियो दीक्षा शुभा प्रोक्ता मातुश्चाष्टगुणा स्मृता॥

(योगिनीतन्त्र)

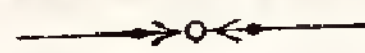
'साध्वी, सदाचारिणी, गुरुभक्ता, जितेन्द्रिया, सर्वमन्त्रार्थतत्त्वज्ञा, सुशीला, देवपूजनादि कार्यानुरक्ता स्त्री ही गुरु बनने के योग्य है। इन समस्त गुणों से युक्त स्त्रियों से दीक्षा-ग्रहण करना शुभप्रद कहा है। किन्तु विधवा स्त्री से दीक्षा-ग्रहण करना त्याज्य कहा है। अन्य स्त्रियों की अपेक्षा माता के द्वारा दीक्षा-ग्रहण करने से आठ गुना अधिक फल प्राप्त होता है।'

अपनेसे श्रेष्ठ वर्णवालेको शिष्य बनानेसे हानि

जो हीनवर्णवाला अज्ञानवश अथवा लोभवश अपने से श्रेष्ठ वर्ण-वाले को अपना शिष्य बनाता है, वह मृत्यु के बाद क्रमशः शूकर, गर्दभ आदि पापयोनियों को भोगकर चाण्डाल योनि को प्राप्त करता है।

यो हीनश्चोत्तमं वर्णं शिष्यत्वे विनियोजयेत् ।
स शूकरमुखं याति ताड्यमानो यमानुजैः ॥
(कौशिकसंहिता)

'जो हीनवर्ण अपने से श्रेष्ठ वर्णवाले को अपना शिष्य बनाता है, वह मृत्यु के बाद यमराज के दूतों के द्वारा मार खाता हुआ शूकरमुख नाम के नरक में जाता है।'



स्त्री और सच्छूद्र भी दीक्षा-ग्रहण के अधिकारी हैं

तान्त्रिकेषु च मन्त्रेषु दीक्षायां योषितामपि ।
साध्वीनामधिकारोऽस्ति शूद्रादीनां च सद्धियाम् ॥
(हरिभक्तिविलास)

'तान्त्रिक मन्त्रों में और तान्त्रिक मन्त्र की दीक्षा-ग्रहण में साध्वी स्त्रियों और श्रेष्ठ बुद्धिवाले शूद्र आदि का भी अधिकार है।'

अतः सुयोग्य गुरु चारों वर्णों को और साध्वी स्त्रियों को दीक्षा प्रदान कर सकता है।

ब्राह्मणान् क्षत्रियान् वैश्यान् सच्छूद्रान् सत्स्त्रियोऽपि वा ।
विष्णुभक्तिपरान् साधून् दीक्षयेत् विधिना गुरुः ॥
(विष्णुयामल)

'ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, सच्छूद्र और साध्वी स्त्रियों को तथा जो विष्णुभक्तियुक्त सदाचारी हों उनको गुरु विधि-विधानपूर्वक दीक्षा-प्रदान करे।'



स्त्री और शूद्रको प्रणव आदिके सहित दीक्षा-प्रदानका निषेध

प्रणवाद्यं न दातव्यं मन्त्रं शूद्राय सर्वथा ।
आत्ममन्त्रं गुरोर्मन्त्रं मन्त्रश्चाजपपूर्वकम् ॥
स्वाहाप्रणवसंयुक्तं शूद्रे मन्त्रं ददद्द्विजः ।
शूद्रो निरयमाप्नोति ब्राह्मणो यात्यधोगतिम् ॥

(तन्त्रसार)

'शूद्रको प्रणव (ॐकार) और प्रणवघटित मन्त्र कदापि नहीं देना चाहिये। जो ब्राह्मण शूद्र को आत्ममन्त्र, गुरुमन्त्र बिना जप किया हुआ मन्त्र, स्वाहा और प्रणव से संयुक्त मन्त्र देता है, वह अधोगति को प्राप्त होता है और मन्त्र को लेनेवाला शूद्र नरक को प्राप्त होता है।'

'स्त्रीशूद्रेभ्यो मनुं दद्यात् स्वाहाप्रणववर्जितम् ।'

(नारदपञ्चरात्र)

'स्त्री और शूद्रों को स्वाहा तथा प्रणवरहित मन्त्र-दीक्षा देनी चाहिये।'

स्त्री और शूद्रको मन्त्र देनेका विशेष विधान

स्त्रीशूद्राणामयं मन्त्रो नमोऽन्तश्च सुखावहः ।
एतज्ज्ञात्वा महेशानि ! चाण्डालानपि दीक्षयेत् ॥

(कुलार्णव)

'स्त्री और शूद्रों के लिये 'नमः' जिसके अन्त में हो ऐसा मन्त्र सुखदायक माना गया है। हे देवि ! इन सभी बातों को जानकर चाण्डालों को भी दीक्षा देनी चाहिये।'

दीक्षा-ग्रहणके अधिकारी

श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न सदाचारी और आस्तिक वर्णचतुष्टय तथा स्त्रियों को तन्त्रोक्त और आगमोक्त मन्त्र की दीक्षा-ग्रहण का अधिकार है। अतः वर्ण-चतुष्टय और साध्वी स्त्रियों को तन्त्रोक्त अथवा पुराणोक्त दीक्षा-ग्रहण कर अपना मानव-जीवन सफल करना चाहिये।

दीक्षा-ग्रहणके अनधिकारी

जो हीनकुल में अथवा दूषित कुल में उत्पन्न हुए हों, धूर्त हों, अभिमानी हों, आचरणभ्रष्ट हों, गुरुद्रोही हों, ब्राह्मण-द्वेषी हों और नास्तिक हों, ऐसे मनुष्य दीक्षा-ग्रहण के सर्वथा अनधिकारी हैं। अतः इस प्रकार के मनुष्यों को दीक्षा नहीं देनी चाहिये।

दीक्षा देनेके अधिकारी

जो श्रेष्ठ ब्राह्मणकुल में उत्पन्न हों, सदाचारसम्पन्न हों, धार्मिक हों, गो-ब्राह्मणभक्त हों, परोपकारी हों, समदर्शी हों और वेद-वेदाङ्गों में निष्णात हों—इस प्रकार के व्यक्ति शिष्य को दीक्षा देने के अधिकारी हैं और वे ही गुरु हो सकते हैं।

किस गुरुकी दीक्षा सफल होती है

गुरवो निर्मलाः शान्ताः साधवो मितभाषिणः।
कामक्रोधविनिर्मुक्ताः सदाचारा जितेन्द्रियाः॥
एतैः कारुण्यतो दत्तो मन्त्रः क्षिप्रं च सिद्ध्यति॥

'गुरु को निर्मल, शान्त, सज्जन, मितभाषी, काम और क्रोध से रहित, सदाचारी तथा जितेन्द्रिय होना चाहिये। जो गुरु इन गुणों से करुणायुक्त हो, उसकी दी हुई मन्त्रदीक्षा शीघ्र ही सिद्ध होती है।'

दीक्षाकी प्रथा

दीक्षा की प्रथा बहुत प्राचीन काल से प्रचलित है। अतएव ऋषि, मुनि, सन्त, महन्त, पण्डित एवं राजा से रङ्क तक तथा दीन-हीन से धनकुबेर तक दीक्षा-ग्रहण करते हैं।

दीक्षा की प्रथा केवल हिन्दू-जाति में ही नहीं, किन्तु संसार की समस्त जाति और सम्प्रदाय में किसी न किसी रूप में प्रचलित है। इसलिये हिन्दू, जैन, बौद्ध, यवन और ईसाई आदि सभी सम्प्रदायवाले अपने-अपने गुरु से दीक्षा-ग्रहण करते हैं। जाति तथा धर्मभेद से समस्त सम्प्रदाय में दीक्षा-ग्रहण की विधि में भले ही कुछ भिन्नता हो, किन्तु सिद्धान्त सबका एक ही है।

गायत्रीमन्त्र और भगवन्नाममन्त्र

गायत्री-मन्त्र की दीक्षा से केवल वर्णसिद्धि अर्थात् द्विजत्व की प्राप्ति होती है, मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती। मोक्ष की प्राप्ति भगवन्नाम–मन्त्र की दीक्षा से ही होती है। अतः मनुष्य को मोक्ष की प्राप्ति के लिये गुरु के द्वारा भगवन्नाम-मन्त्र की दीक्षा-ग्रहण करना चाहिये।

गुरुकी आवश्यकता

समस्त हिन्दूधर्मग्रन्थों में गुरु की आवश्यकता बतलायी गयी है। जिस प्रकार ऐहलौकिक पदार्थों की प्राप्ति के लिये मनुष्य को माता, पिता आदि की आवश्यकता पड़ती है, उसी प्रकार पारलौकिक भगवत् तत्त्व तथा भगवत्प्राप्ति के लिये उसको गुरु की आवश्यकता होती है। गुरु के बिना मनुष्य को भगवत् तत्त्व एवं भगवत्प्राप्ति नहीं हो सकती। अतः भगवत्प्राप्ति के लिये गुरु ही प्रधान साधन है, जिसके द्वारा मनुष्य सुगमता से भगवत्प्राप्ति अथवा भगवत्साक्षात्कार कर लेता है। इसलिये मनुष्य के लिये गुरु को ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर और साक्षात् परब्रह्म तक कहा है।

गुरुर्ब्रह्मागुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात्परब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः॥

(देवीभागवत ११।१।४१)

गुरु की महिमामयी शक्ति अद्भुत और अवर्णनीय है। वह ईश्वर-विमुख मनुष्य को ईश्वरोन्मुख और धर्मविमुख को कट्टर धार्मिक बनाकर उसका जीवन आदर्श और महत्त्वपूर्ण कर देता है। अतः मनुष्य के लिये गुरु बहुत हो सम्माननीय आराधनीय और संग्रहणीय है। इसलिये मनुष्यमात्र को आत्मकल्याणार्थ गुरु का आश्रय ग्रहण करना चाहिये।

ब्राह्मणः क्षत्रियो वापि वैश्यः शूद्रोऽथवा पुनः।
एवं स्त्रियो वा यत्नेन गुरुमेव समाश्रयेत्॥

(मन्त्रसार)

'ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और स्त्रियों को भी प्रयत्नपूर्वक गुरु का आश्रय लेना चाहिये।'

गुरु का आश्रय लेने के लिये मनुष्य को सुयोग्य श्रेष्ठ ब्राह्मण के पास पहुँच कर उनसे भगवन्मन्त्र की दीक्षा-ग्रहण करना चाहिये।

उपगम्य गुरुं विप्रमाचार्यं तत्त्ववेदिनम् ।
जापिनं सद्गुणोपेतं ध्यानयोगपरायणम् ॥

(शिवपुराण)

'मनुष्य को ब्राह्मण, आचार्य, सर्वशास्त्रपारङ्गत, तत्त्ववेत्ता, जप-कर्ता, सद्गुणसम्पन्न, ध्यान और योग में निपुण गुरु के पास जाकर दीक्षा-ग्रहण करना चाहिये।'

सुयोग्य गुरु का आश्रय ग्रहण करने से ही मनुष्य को भगवन्मन्त्र की दीक्षा प्राप्त होती है। सुयोग्य गुरु से भगवन्मन्त्र दीक्षा प्राप्त करने पर ही वह भगवन्मन्त्र शिष्य के लिये महत्त्वपूर्ण एवं लाभप्रद होता है और उसी गुरुप्रदत्त भगवन्मन्त्र के जप आदि करने का भी विशेष महत्त्व कहा गया है। जो मनुष्य गुरु से मन्त्रग्रहण किये बिना भगवन्मन्त्र का जप करते हैं, उनका भगवन्मन्त्र जप व्यर्थ ही होता है—

'वृथा मन्त्रो गुरुं विना।'

(मार्कण्डेयपुराण, डामरतन्त्र)।

पौराणिकी कथा है कि—एक बार नारदजी भगवान् विष्णु के यहाँ गये। जब नारद जी वापस जाने के लिये उठे, तो भगवान् विष्णु ने उस जगह को जल से धुलवा दिया। नारद जी ने इस बात को देखकर आश्चर्य माना। नारद जी वहाँ से भगवान् शिवजी के यहाँ गये। वहाँ से भी जब नारद उठे तो भगवान् शिवजी ने भी उस जमीन को जल से धुलवाया। तब नारद जी ने शिवजी से कहा—'मैं पहले भगवान् विष्णु के यहाँ गया था। मेरे उठने पर उन्होंने भी उस जगह को जल से धुलवाया था और आपके यहाँ आया हूँ, तो आप भी मेरे बैठनेवाली जमीन को जल से धुलवा रहे हैं। इसका क्या कारण है?' शिवजी ने कहा—'नारद! तुम्हारी गुरु में निष्ठा नहीं है, इसीलिये तुमने अभी तक अपना गुरु

नहीं बनाया। अतः तुम अपवित्र हो। गुरुमन्त्र-ग्रहण किये बिना मनुष्य सर्वदा अपवित्र रहता है। इसलिये पवित्र बनने के लिये तुम अपना गुरु बनाओ। अतः स्पष्ट है कि गुरु की आवश्यकता सभी को है।

गुरु और मन्त्रके त्यागसे शिष्यकी हानि

मन्त्रत्यागाद्भवेन्मृत्युर्गुरुत्यागाद्दरिद्रता ।
गुरु-मन्त्रपरित्यागाद्रौरवं नरकं व्रजेत् ॥

(तन्त्रसार)

'गुरु के द्वारा गृहीत मन्त्र के परित्याग से मृत्यु और गुरु के त्याग से शिष्य को दरिद्रता प्राप्त होती है। गुरु तथा मन्त्र इन दोनों के परित्याग से रौरव नरक की प्राप्ति होती है।'

योग्यमाद्यं गुरुं त्यक्त्वा शिष्यः क्षुद्रक्रियाविदम् ।
गुरुं समाश्रयेदन्यं यः प्रयाति स दुर्गतिम् ॥

(सूतसंहिता)

'जो शिष्य अपने प्रथम योग्य गुरु को त्याग कर क्षुद्रक्रियाविद् अन्य गुरु का आश्रय ग्रहण करता है, वह दुर्गति को प्राप्त करता है।'

अयोग्य गुरु त्याज्य है

ज्ञानहीनो गुरुस्त्याज्यो मिथ्यावादी विडंबकः ।
स्वविश्रान्तिं न जानाति परशान्तिं करोति किम् ॥

(रुद्रयामल)

'ज्ञानहीन, मिथ्यावादी तथा वञ्चक गुरु सर्वथा त्याज्य होता है। क्योंकि जो गुरु स्वतः विश्रान्ति अथवा श्रेय को नहीं जानता, वह दूसरे का अर्थात् शिष्य का श्रेय कैसे कर सकता है ?'

गुरुमें दोष हो तो गुरुप्रदत्त मन्त्रका त्याग उचित है

गृहीतमन्त्रस्त्यक्तव्यो गुरुश्चेद्दोषसंयुतः ।
महापातकयुक्तो वा पुनश्चेद्देवनिन्दकः ॥

(तन्त्रान्तरे)

'मन्त्रदीक्षा-ग्रहण कर लेने पर भी यदि गुरु दोषों और महापातकों से युक्त हो तथा देवताओं की निन्दा करनेवाला हो तो उसे त्याग देना चाहिये ।'



गुरुप्रदत्त मन्त्र गोपनीय होता है

गुरु के द्वारा शिष्य को मन्त्रोपदेश गुप्तरूप से दिया जाता है। गुप्तरूप से उपदेश प्रदान करने के कारण ही इसे 'मन्त्र' कहते हैं— **'गुप्तोपदेशतो मन्त्रः ।'** अतः गुरु के द्वारा प्रदत्त मन्त्र को सर्वदा गुप्त ही रखना चाहिये। गुरुप्रदत्त मन्त्र के प्रकाशित करने से सिद्धि की हानि होती है—**'प्रकाशे सिद्धिहानिः स्यात् ।'** इसलिये शिष्य गुरु के द्वारा गृहीत मन्त्र और माला को अपने गुरु को भी न दिखलावे—

'स्वमन्त्रमक्षिसूत्रं च गुरोरपि न प्रदर्शयेत् ।'

अतः स्पष्ट है कि सुयोग्य शिष्य गुरु के द्वारा गृहीत मन्त्र को अपने गुरु को भी न बतलावे और माला को भी न दिखलावे।

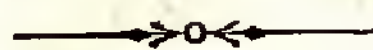
गुरुं प्रकाशयेद् धीमान् मन्त्रं यत्नेन गोपयेत् ।
अप्रकाशप्रकाशाभ्यां क्षीयन्ते सम्पदायुषी ॥

(कुलार्णव)

'बुद्धिमानों का यह परम कर्तव्य है कि वह गुरु का प्रचार अवश्य करें, किन्तु गुरुप्रदत्त मन्त्र का प्रचार न कर उसे गुप्त रखें। यदि गुरु का प्रचार न कर मन्त्र का प्रचार किया जाय तो इन दोनों कार्यों से सम्पत्ति और आयु का विनाश होता है।'

मन्त्र शब्द **'मन्त्रिगुप्तपरिभाषणे'** धातु से निष्पन्न होता है। गुप्त परिभाषण ही गोप्यता कही जाती है। गुप्त परिभाषण का तात्पर्य यह है कि गुरुप्रदत्त मन्त्र को किसी अनधिकारी व्यक्ति को न सुनावे। मन्त्र को गुप्त रखना ही गुरुप्रदत्त मन्त्र का मन्त्रत्व है।

गुरुप्रदत्त मन्त्र साधन है और इष्ट साध्य है। वह गोप्य है। गोप्यता और इष्ट ये दोनों ही सिद्धि प्राप्ति के पूर्व गुप्त होते हैं। किन्तु गुरु के आदेश से शिष्य उस गोप्य मन्त्र को गोपन (रक्षण) पूर्वक गुप्त ही रखता है। गोप्य ही शून्य है। इष्ट की शक्ति **'शून्यानां शून्यसाक्षिणी'** के अनुसार उस शून्य की प्रकाशिका होकर सिद्धि-दात्री होती है। यही मन्त्र का मन्त्रत्व है। दीक्षा का भी यही नियम है। अतः शिष्यको चाहिये कि वह गुरु के द्वारा जिस मन्त्र को ग्रहण करे, उस मन्त्र को मोहवश दूसरे व्यक्ति को न बतलावे। गुरुप्रदत्त मन्त्र के सिद्ध हो जाने पर शिष्य अपनी शिष्यपरम्परा में उस मन्त्र की दीक्षा दे सकता है।



ब्राह्मण आदिको और शूद्रको देने योग्य मन्त्र

वैदिको मिश्रितो वाऽपि विप्रादीनां विधीयते।
तान्त्रिको विप्रभक्तस्य शूद्रस्यापि प्रकीर्तितः॥

(ब्रह्मपुराण)

'ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के लिये वैदिक और पौराणिक मन्त्र की दीक्षा प्रशस्त कही गयी है। ब्राह्मणों के भक्तों के लिये और शूद्रों के लिये तान्त्रिक मन्त्र की दीक्षा कही गयी है।'

पुराणोक्त 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' इस द्वादशाक्षर मन्त्रका और 'ॐ नमो नारायणाय' इस अष्टाक्षर मन्त्र का अधिकार विशेषकर स्त्रियों और शूद्रों के लिये कहा गया है, किन्तु इन मन्त्रों का अधिकार द्विजातियों के लिये भी कहा गया है।

एतत्प्रोक्तं द्विजातीनां स्त्री-शूद्रेषु च यच्छृणु ।
द्वादशाष्टाक्षरौ मन्त्रौ तेषां प्रोक्तौ महात्मनाम् ॥
(विष्णुधर्मोत्तरपुराण)

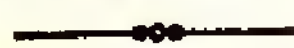
'महात्माओं ने द्विजातियों (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों) के लिये तथा स्त्री एवं शूद्रों के लिये द्वादशाक्षर मन्त्र (ॐ नमो भगवते वासुदेवाय) और अष्टाक्षर मन्त्र (ॐ नमो नारायणाय) श्रेष्ठ कहा है ।'



वर्ण-चतुष्टयको देने योग्य मन्त्र

छिन्नमस्ता च मातङ्गी त्रिपुरा कालिका शिवः ।
लघुश्यामा कालरात्रिर्गोपालो जानकीपतिः ॥
उग्रतारा भैरवश्च देया वर्णचतुष्टये ॥
(मन्त्रमहोदधि)

'छिन्नमस्ता, मातङ्गी, त्रिपुरा, कालिका, शिव, लघुश्यामा, कालरात्रि, गोपाल, जानकीपति (राम), उग्रतारा तथा भैरवादि के मन्त्र ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्रादिको भी देने चाहिएँ ।'



वर्णत्रयको देने योग्य मन्त्र

अघोरा दक्षिणामूर्तिरुमामाहेश्वरो मनुः ।
हयग्रीवो वराहश्च लक्ष्मीनारायणस्तथा ॥
प्रणवाद्याश्चतुर्वर्णा वह्नेर्मन्त्रास्तथा रवेः ।
प्रणवाद्यो गणपतिर्हरिद्रा गणनायकः ॥

सौराष्टाक्षरमन्त्रश्च तथा रामषडक्षरः ।
मन्त्रराजो ध्रुवादिश्च प्रणवो वैदिको मनुः ॥
वर्णत्रयाय दातव्या एते शूद्राय नो बुधैः ।
(मन्त्रमहोदधि)

'अघोर, दक्षिणामूर्ति, उमा, महेश्वर, हयग्रीव, वराह, लक्ष्मीनारायणादि मन्त्र प्रणव से युक्त चतुवर्णवाला वह्नि तथा सूर्यमन्त्र, प्रणवादि से युक्त गणपतिमन्त्र हरिद्रा-गणनायक मन्त्र, सौराष्टाक्षर मन्त्र, षडक्षर राममन्त्र, मन्त्रराज, ध्रुवादि तथा केवल प्रणव वैदिक मन्त्रादि विद्वानों को चाहिये वे केवल ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य इन त्रैवर्णिकको ही दें, शूद्र को कभी न दे ।'

हितौ तौ च द्विजातीनां मन्त्रश्रेष्ठौ नराधिप ।
तेभ्योऽप्यधिकमन्त्रोऽपि विद्यते न हि कुत्रचित् ॥

'हे राजन् ! ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य इनके लिये द्वादशाक्षर और अष्टाक्षर सभी मन्त्रों में श्रेष्ठ और हितकारक हैं । इन दोनों मन्त्रों से बढ़कर और कोई मन्त्र श्रेष्ठ कहीं नहीं है ।'

ब्राह्मण और क्षत्रियको देने योग्य मन्त्र

सुदर्शनं पाशुपतमाग्नेयास्त्रं नृकेसरी ।
वर्णद्वयाय दातव्या नान्यवर्णे कदाचन ॥
(मन्त्रमहोदधि)

'सुदर्शन, पाशुपत, आग्नेय तथा नृसिंहास्त्र मन्त्र को केवल ब्राह्मण और क्षत्रिय को ही प्रदान करे, अन्य वर्ण को कभी न दे ।'

स्त्री और शूद्रको देने योग्य मन्त्र

स्त्री और शूद्र के लिये द्वादशाक्षर मन्त्र और अष्टाक्षर मन्त्र कहा गया है।

द्वादशाक्षर मन्त्र—

ह्रीं नमो भगवते वासुदेवाय।

(विष्णुधर्मोत्तर १।१५५।२८)

अष्टाक्षर मन्त्र—

ह्रीं नमो नारायणाय।

(विष्णुधर्मोत्तर १।१५५।२८)

मन्त्र-शब्दार्थ

'मन्त्रयते मन्त्रजपं वा' इस अर्थ में **'मन्त्रिगुप्तपरिभाषणे'** धातु से 'घञ्' प्रत्यय करने पर 'मन्त्र' शब्द की निष्पत्ति होती है।

महर्षि यास्कने 'मन्त्र' शब्द का अर्थ इस प्रकार लिखा है—**'मन्त्रा मननात्'** (निरुक्त ७।३)। अर्थात् मनन-क्रिया होने से 'मन्त्र' कहलाता है। इसकी व्याख्या दुर्गाचार्य ने इस प्रकार की है–'समस्त आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधियज्ञ विचारों के मनन करने से 'मन्त्र' कहा जाता है।'

ॐकारादिसमायुक्तं नमस्कारान्तमीरितम्।
स्वनामसर्वसत्त्वानां मन्त्र इत्यभिधीयते॥

(ब्रह्मपुराण)

'जिसके आदि में ॐकार हो तथा अन्त में नमः हो और सभी सत्त्वों के मध्य में जिसका नाम प्रसिद्ध हो, उसे मन्त्र कहा जाता ।'

मननं विश्वविज्ञानं त्राणं संसारबन्धनात् ।
यतः करोति संसद्धिं मन्त्र इत्युच्यते नरः ॥

(पिङ्गलामत)

'विश्व के विज्ञान जो मनन करने के कारण तथा संसारबन्धन से त्राण करने के कारण हो समस्त सिद्धि को जो प्रदान करता है, उसे लोग मन्त्र ऐसा कहते हैं ।'

मननात् त्राणनाच्चैव मद्रूपस्यावबोधनात् ।
मन्त्र इत्युच्यते सम्यङ् मदधिष्ठानतः प्रिये ॥

'हे प्रिये ! मनन करने से, सांसारिक बन्धनों से त्राण करने से तथा मेरे रूप का ज्ञान कराने एवं मदाश्रित होने से इसे 'मन्त्र' कहा गया है ।'

'गुप्तोपदेशतो मन्त्रो मननात् त्राणनादपि ।'

'गुप्त वस्तु का अर्थात् परमात्मस्वरूप का उपदेश करने से, मनन करने से तथा सांसारिक बन्धनों से त्राण करने से 'मन्त्र' कहा गया है ।'

'धर्मार्थकाममोक्षाणां साधनं मन्त्र उच्यते ।'

(मेरुतन्त्र)

'धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का जो साधन हो, उसे मन्त्र कहते हैं ।'

मन्त्रोंके भेद

आगमादि शास्त्रों में मन्त्रों के अनेक भेद मिलते हैं, जिनमें से कतिपय मन्त्रों के भेद उद्धृत किये जाते हैं ।

१—मुख्यतया मन्त्र तीन प्रकार के होते हैं—वैदिक, पौराणिक और तान्त्रिक। वेदोक्त मन्त्र को 'वैदिक' मन्त्र कहते हैं। पुराणोक्त मन्त्रको 'पौराणिक' मन्त्र कहते हैं। तन्त्रोक्त (आगमोक्त) मन्त्रको 'तान्त्रिक' मन्त्र कहते हैं।

२. नैगमिक, आगमिक, पौराणिक, शावर और प्रकीर्णक—ये मन्त्रों के पाँच भेद कहे गये हैं।

३—मन्त्र तीन प्रकार के होते हैं—पुल्लिङ्ग, स्त्रीलिङ्ग और नपुंसक।

जिस मन्त्र के अन्त में 'हुं फट्' हो उसे 'पुरुष-मन्त्र' अर्थात् पुल्लिङ्ग कहते हैं।

जिस मन्त्र के अन्त में 'स्वाहा' हो उसे 'स्त्री-मन्त्र' अर्थात् स्त्रीलिङ्ग कहते हैं।

जिस मन्त्र के अन्त में 'नमः' हो उसे 'नपुंसक' मन्त्र कहते हैं।

मन्त्राः पुंदेवता ज्ञेया विद्याः स्त्रीदेवताः स्मृताः।
पुं-स्त्री-नपुंसकात्मानो मन्त्राः सर्वे समीरिताः॥
पुंमन्त्रा हुँफडन्ताः स्युर्द्विठान्ताः[1] स्युः स्त्रियो मताः।
नपुंसका नमोऽन्ताः स्युरित्युक्ता मनवस्त्रिधा॥

(शारदातिलक)

'पुंदैवत मन्त्रों को जानना चाहिये, विद्याएँ स्त्रीदैवत कही गयी हैं। सभी मन्त्र पुरुष, स्त्री और नपुंसकस्वरूप कहे गये हैं। जिस मन्त्र के अन्त में 'हुँफट्' हो वह पुरुष-मन्त्र है। जिस मन्त्र के अन्त में दो ठकार हो अर्थात् स्वाहा हो वह स्त्रीसूचक मन्त्र है। जिस मन्त्र के अन्त में 'नमः' हो वह नपुंसक मन्त्र है। इस प्रकार मन्त्र त्रिविध माने गये हैं।'

---

१. 'द्विठान्त' का अर्थ 'स्वाहान्त' होता है।

स्त्री-पुं-नपुंसकाः प्रोक्ता मनवस्त्रिविधा बुधैः ।
वषडन्ताः फडन्ताश्च पुमांसो मनवः स्मृताः ॥
वौषट् स्वाहान्तगा नार्यो हुं नमोऽन्ता नपुंसकाः ।

(मन्त्रमहोदधि)

'स्त्रीलिङ्ग, पुलिङ्ग तथा नपुंसक के भेद से विद्वानों ने मन्त्रों के तीन भेद बतलाये हैं। वषट् तथा फट् जिनके अन्त में हो वे पुंसूचक मन्त्र हैं। वौषट् और स्वाहा जिनके अन्त में हो वे स्त्री-सूचक मन्त्र हैं। हुम् तथा नमः जिनके अन्त में हो वे नपुंसक-सूचक मन्त्र हैं।'

मन्त्रका प्रभाव

वेदादि शास्त्रों में प्रणवादि मन्त्रों का अद्भुत महत्त्व लिखा है। मन्त्र के सिद्ध कर लेने से मनुष्य जो चाहे वह कार्य कर सकता है। मन्त्र के प्रभाव से देवता भी मनुष्य के अधीन हो जाते हैं—**'मन्त्राधीनाश्च देवताः ।'**

योगशास्त्र में लिखा है—

मन्त्रसाधनतो देवा देव्यः संयान्ति वश्यताम् ।
विभवाश्चैव जगतो यान्ति तस्योपभोग्यताम् ॥

'मन्त्रानुष्ठान से समस्त देवी-देवता वशीभूत हो जाते हैं। अतः मन्त्र-सिद्ध पुरुष को उसके उपभोगार्थ संसार के समस्त वैभव प्राप्त हो जाते हैं।'

मन्त्रका महत्त्व

मन्त्रो महेश्वरः साक्षान्मन्त्र एव महौषधम् ।
न हि मन्त्रात्परं कश्चित् सर्वसिद्धिप्रदायकः ॥

साधकानां फलं दातुं तत्तद्रूपं धृतं सुरैः ।
मुख्यस्वरूपं तेषां तु मन्त्र एव न चेतरत् ॥

'मन्त्र साक्षात् महेश्वर है और मन्त्र ही महौषधि है । मन्त्र से बढ़कर सिद्धिप्रद और कोई दूसरी वस्तु नहीं है । साधकों को फल देने के लिये देवताओं ने तत्तत् स्वरूप को धारण किया है, किन्तु उन स्वरूपों में मन्त्र ही मुख्य स्वरूप है, अन्य नहीं ।'

पुल्लिङ्ग, स्त्रीलिङ्ग और नपुंसक लिङ्गके मन्त्रोंका कर्म-विशेषमें उपयोग

वश्योच्चाटनरोधेषु पुमांसः सिद्धिदायकाः ।
क्षुद्रकर्मरुजानाशे स्त्रीमन्त्राः शीघ्रसिद्धिदाः ॥
अभिचारे स्मृताः क्लीबा एवं ते मनवस्त्रिधा ॥

'वशीकरण, उच्चाटन और स्थगन कार्य में पुंसूचक मन्त्र सिद्धिदायक होते हैं । क्षुद्रकर्म और रोगादि नाश के लिये स्त्रीसूचक मन्त्र सिद्धिदायक होते हैं । मारणक्रिया में नपुंसकसूचक मन्त्र दिद्धिदायक होते हैं । इस प्रकार मन्त्र तीन प्रकार के होते हैं ।'

बीजमन्त्रास्तथा मन्त्रा मालामन्त्रास्तथापरे ।
त्रिधा मन्त्रगणाः प्रोक्ता बुधैरागमवेदिभिः ॥
बाल्ये वयसि सिद्ध्यन्ति बीजमन्त्रा उपासितुः ।
मन्त्राः सिद्धा यौवने तु [1]मालामन्त्राश्च वार्द्धके ॥
उक्तान्यस्यामवस्थायामभीष्टप्राप्तये सुधीः ॥
(मन्त्रमहोदधि)

---

१. बीजमन्त्रादशार्णान्तास्ततो मन्त्रा नखावधि ।
विंशत्यधिकवर्णा ये मालामन्त्रास्तु ते स्मृताः ॥ (मन्त्रमहोदधि)

'दशाक्षर बीजमन्त्र, बीस अक्षरवाला मन्त्र तथा बीस से अधिक अक्षरवाला मालामन्त्र कहा गया है। इस प्रकार आगमवेत्ता विद्वानों ने त्रिविध मन्त्रगण हैं, ऐसा कहा है।

उपासक को बाल्यावस्था में बीजमन्त्र सिद्ध होते हैं, युवावस्था में मन्त्र सिद्ध होते हैं तथा वृद्धावस्था में मालामन्त्र सिद्ध होते हैं। विद्वानों को चाहिये कि तत्तत् अवस्थाओं में अभीष्ट की सिद्धि के लिये उपर्युक्त मन्त्रों को सिद्ध करें।'



गुरु-शब्दार्थ

'गृणाति उपदिशति' अथवा **'गिरत्यज्ञानम्'** इन दो अर्थों में क्रमशः 'गृ शब्दे' क्र्यादि और 'गृ निगरणे' तुदादिगण की धातुको 'कृग्रोरुच्च' (१।२४) इस औणादिक सूत्र से 'कु' प्रत्यय और अन्तादेश करने पर 'उरणरपरः' (१।१।५१) इससे 'रपर' करने के बाद 'कृत्तद्धितसमासाश्च' (१।२।४६) इससे प्रातिपदिक संज्ञा करने पर और 'सु' विभक्ति लगाने पर 'गुरुः' शब्द बनता है।

'गुणान् रुन्धे इति प्रोक्तो गुरुशब्दस्य विग्रहः।'

(शिवपुराण, विद्येश्वरसंहिता १८।८३)

'जो 'गु' अर्थात् अपने गुणों को शिष्य में 'रु' अर्थात् प्रतिष्ठित करता है, वह गुरु है। यही गुरु शब्द का अर्थ है।'

सविकारान् राजसादीन् गुणान् रुन्धे व्यपोहति।
गुणातीतः परशिवो गुरुरूपं समाश्रितः॥
गुणत्रयं व्यपोह्याग्रे शिवं बोधयतीति सः।
विश्वस्तानां च शिष्याणां गुरुरित्यभिधीयते॥

(शिवपुराण, विद्येश्वरसंहिता १८।८४,८५)

'जो शिष्य के विकाररहित राजस गुणों को दूर करता है, वह गुणातीत परम शिव गुरुरूप कहा गया है अर्थात् गुरु शिवरूप होता है। जो विश्वसनीय शिष्यों के तीनों प्रकार के गुणों को दूर कर शिव का ज्ञान करा देता है, उसी को गुरु कहते हैं।'

[१]गुशब्दस्त्वन्धकारः स्याद्रुशब्दस्तन्निरोधकः।
अन्धकारनिरोधित्वाद् गुरुरित्यभिधीयते॥
(अद्वयतारकोपनिषत् ५६)

'गु' शब्द का अर्थ अन्धकार है और 'रु' शब्द का अर्थ अन्धकार को दूर करनेवाला है। अर्थात् अविद्यारूपी अज्ञानान्धकार को दूर कर जो ज्ञानमार्ग का उपदेश करे, उसे गुरु कहते हैं।'

गकारः सिद्धिदः प्रोक्तो रेफः पापस्य हारकः।
उकारो विष्णुरव्यक्तस्त्रितयात्मा गुरुः परः॥
(शब्दकल्पद्रुम, काण्ड २, खण्ड ११)

'गुरु शब्द में 'गु' अक्षर सिद्धि को देनेवाला, 'र' अक्षर पाप को हरनेवाला और 'उ' अक्षर अव्यक्त विष्णु का वाचक है। इन तीनों अक्षरों से बना हुआ 'गुरु' शब्द परमात्मस्वरूप ही है।'

गुरु—शब्दका व्युत्पत्तिजन्य अर्थ

१. गृणाति-ऐहिकाऽऽमुष्मिकार्थान् सकलान् वेदयते तापान्निवारयतीति गुरुः।
२. गृणाति दैहिक-दैविक-भौतिकान् संवेद्य दूरयति सुखे स्थापयतीति गुरुः।

---

१. गुकारश्चान्धकारो हि रुकारस्तेज उच्यते।
अज्ञानग्रासकं ब्रह्म गुरुरेव न संशयः॥

३. गृणाति स्वहृदयस्थान् सर्वानपि तत्त्वार्थान् बहिष्कृत्य शिष्येभ्यो वितरतीति गुरुः ।

४. गृणाति निगालयति हितोपदेशाननन्यमनस्कानपि शिष्यानिति गुरुः ।

५. गृणाति गायत्रीमन्त्रादिदीक्षाप्रदानेनाऽनुगृह्णातीति गुरुः ।

६. गृणाति सर्वार्थानुपदिशति शिष्यानिति गुरुः ।

७. गृणाति सकलजगदुपद्रवैः रक्षतीति गुरुः ।

'जो इहलोक और परलोक के समस्त अर्थों को समझावे तथा दुःखों से निवारण करे, उसे गुरु कहते हैं। जो दैहिक, दैविक, भौतिक इन तीनों का ज्ञान कराकर सुखरूप में स्थिर करे, उसे गुरु कहते हैं। जो अपने हृदय में रहनेवाले समस्त तत्त्वों को बाहर निकाल कर शिष्यगण को प्रदान करे, उसे गुरु कहते हैं। जो संसारी वैषयिक प्रपञ्चों में फँसे रहने के कारण अपने चित्त को असन्मार्ग में लगाये हुए हैं, उन्हें हठात् हितोपदेश कर सन्मार्ग की ओर प्रवृत्त करे, उसे गुरु कहते हैं। जो गायत्री-मन्त्र अथवा भगवन्मन्त्र आदि की दीक्षा देकर शिष्य को अनुगृहीत करे, उसे गुरु कहते हैं। जो शिष्यों के लिये समस्त अर्थों का उपदेश करे, उसे गुरु कहते हैं। जो समस्त संसार के उपद्रवों से रक्षा करे, उसे गुरु कहते हैं।' (यह संक्षिप्तार्थ है)

गुरु- शब्दका पारिभाषिक अर्थ

१. यः सर्वदा शिष्यं धर्मे सदाचारे च प्रवर्त्तयेत् स गुरुरित्युच्यते ।

२. यः पुत्रवत् स्नेहपूर्वकं वेद-वेदाङ्गान्यध्यापयेत् स गुरुरित्युच्यते ।

३. यः सांसारिकेषु मायाजालेषु भ्रान्तं ज्ञानमार्गोपदेशैः दुःखमयात् संसारात् परित्रायेत् स गुरुरित्युच्यते ।

४. यः अविद्यान्धकारावृतं पुरुषं तच्छिक्षया ज्ञानविज्ञानाधिकारिणं साधयेत् स गुरुरित्युच्यते ।

५. यः सांसारिकेषु विषयेषु अनित्याऽशुचिदुःखानात्मसु विवेकख्यातिमुत्पाद्य आध्यात्मिकेषु ज्ञानेषु प्रवर्त्तयेत् स गुरुरित्युच्यते ।

६. यः राग-द्वेषाभिनिवेशादीन् क्लेशान् समूलान् समुच्छिन्दन्नात्मोन्नतिपथं नयेत् स गुरुरित्युच्यते ।

'जो शिष्य को सर्वदा धर्म और सदाचार की ओर प्रवृत्त करे, उसे गुरु कहते हैं। जो शिष्य पर पुत्र की तरह स्नेह करे और उसे वेद-वेदाङ्ग का अध्ययन करावे उसे गुरु कहते हैं। जो संसारी मिथ्या मायाजाल में फँसे हुए शिष्य को ज्ञानमार्गद्वारा दुःखमय संसार से परित्राण करे उसे गुरु कहते हैं। जो अविद्यान्धकाराच्छन्न व्यक्तिको सत्-शिक्षाद्वारा ज्ञान-विज्ञान का अधिकारी बनावे उसे गुरु कहते हैं। जो शिष्य को आध्यात्मिक मार्ग में प्रवृत्त करे उसे गुरु कहते हैं। जो शिष्य की नानाविध अशान्ति को दूर कर उसे आत्मोन्नति का मार्ग दिखावे उसे गुरु कहते हैं।' (यह संक्षिप्तार्थ है)

[1]गुरुके भेद

गुरु अनेक प्रकार के होते हैं, किन्तु उनमें मुख्य गुरु दो प्रकार के कहे गये हैं—दीक्षा-गुरु और शिक्षा-गुरु (विद्यागुरु)।

---

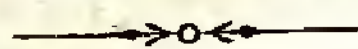
१. प्रेरकः सूचकश्चैव वाचको दर्शकस्तथा ।
शिक्षको बोधकश्चैव षडेते गुरवः स्मृताः ॥
पञ्चैते कार्यभूताः स्युः कारणं बोधको भवेत् ।

गुरुस्तु द्विविधः प्रोक्तो दीक्षाशिक्षाप्रभेदतः ।
आदौ दीक्षागुरुः प्रोक्तः शेषे शिष्यगुरुर्मतः ॥
यन्मुखात्तु महामन्त्रः श्रूयतेऽभ्यस्यतेऽपि वा ।
स गुरुः परमो ज्ञेयस्तदाज्ञा सिद्धिदायिनी ॥
(पिच्छिलातन्त्र)

'दीक्षा और शिक्षा के भेद से गुरु के दो भेद कहे गये हैं। प्रथम दीक्षा-गुरु है, पश्चात् गुरु और शिष्य का सम्बन्ध शिक्षा से है। जिनके मुख से महामन्त्र का श्रवण या अभ्यास किया जाता है वही गुरु श्रेष्ठ है और ऐसे ही गुरु की आज्ञा सिद्धि को देनेवाली होती है।'

दीक्षा-गुरु—उपनयन-संस्कार में जो ब्रह्म-गायत्री की दीक्षा दे, उसे 'दीक्षा-गुरु' कहते हैं अथवा आगमोक्त (तन्त्रोक्त) तथा पुराणोक्त जो भगवन्मन्त्र की दीक्षा दे, उसे 'दीक्षा-गुरु' कहते हैं।

शिक्षा-गुरु (विद्यागुरु)—माता-पिता की तरह प्रतिपालन करते हुए कर्मणा, मनसा, वाचा जो अपने शिष्य को वेद-वेदाङ्ग का अध्यापन करावे, उसे 'शिक्षा-गुरु' कहते हैं।



प्रशंसनीय गुरु

मातृतः पितृतः शुद्धः शुद्धभावो जितेन्द्रियः ।
सर्वागमानां सारज्ञः सर्वशास्त्रार्थतत्त्ववित् ॥
परोपकारनिरतो जपपूजादितत्परः ।
अमोघवचनः शान्तो वेद-वेदार्थपारगः ॥
योगमार्गानुयायी च देवताहृदयङ्गमः ।
इत्यादिगुणसम्पन्नो गुरुरागमसम्मतः ॥
(शारदातिलक)

'जिसका मातृकुल तथा पितृकुल शुद्ध हो, भावशुद्ध हो, जितेन्द्रिय हो, सभी शास्त्रों के सार को जाननेवाला हो, सभी शास्त्रों के अर्थ का तत्त्वज्ञ हो, परोपकार में सदा निरत हो, जप-पूजादि परायण हो, सफल वाक्य हो, शान्त हो, वेद-वेदार्थ में पारङ्गत हो, योग-मार्ग का अनुसरण करनेवाला हो, देवताओं के रहस्य को जाननेवाला हो, तो वह गुरु आगमसम्मत माना गया है।'

सर्वलक्षणसंयुक्तः सर्वशास्त्रविदप्ययम् ।
सर्वोपायविधिज्ञोऽपि तत्त्वहीनतु निष्फलः ॥
यस्यानुभवपर्यन्ता बुद्धिस्तत्र प्रवर्त्तते ।
तस्याऽवलोकनाद्यैश्च परानन्दोऽभिजायते ॥
तस्माद्यस्यैव सम्पर्कात् प्रबोधानन्दसम्भवः ।
गुरुं तमेव वृणुयान्नापरं मतिमान्नरः ॥

(शिवपुराण १३।४३-४५)

'यदि गुरु सभी लक्षणों से सम्पन्न हो, सभी शास्त्रों को जानने वाला हो तथा समस्त उपायों की विधियों का वेत्ता हो, किन्तु वह तत्त्व-हीन हो तो निष्फल ही होता है। जिसका जैसा अनुभव होता है उसकी बुद्धि भी ठीक उसी प्रकार काम करती है तो उसके अवलोकनादि से ही उत्कृष्ट आनन्द की प्राप्ति होती है। अतः जिसके सम्पर्कमात्र से प्रकृष्ट ज्ञान और आनन्द की उत्पत्ति हो तो बुद्धिमान् व्यक्ति का परम कर्तव्य है कि वह वैसे ही गुरु का वरण करे।'

सर्वावयवसम्पूर्णो वेदमन्त्रविशारदः ।
पुराणवेत्ता तत्त्वज्ञो लोभ-मोहविवर्जितः ॥
कृष्णसारचरे देशे उत्पन्नश्च शुभाकृतिः ।
शौचाचाररतो नित्यं पाखण्डकुलनिस्पृहः ॥
समः शत्रौ च मित्रे च ब्रह्मोपेन्द्रहरप्रियः ।

ऊहापोहार्थतत्त्वज्ञो धर्मशास्त्रपरायणः ॥
एवमादिगुणैर्युक्तो गुरुर्भवति नान्यथा ।
(मत्स्यपुराण)

'समस्त अवयवों से युक्त, वेद-मन्त्रों का ज्ञाता, पुराणों का ज्ञाता, तत्त्व का ज्ञाता, लोभ-मोह से रहित, कृष्णसार मृग के विचरण करने योग्य देश में उत्पन्न, सुन्दर आकृतिवाला, शौचाचार-सम्पन्न, पाखण्ड-समूहों से निरपेक्ष, शत्रु और मित्र में समान व्यवहार रखनेवाला अर्थात् किसी से भी न मित्रता और न शत्रुता करनेवाला, ब्रह्मा, विष्णु और शिव इन तीनों का समान स्नेह-भाजन, तर्क-वितर्कपूर्वक तत्त्व-ज्ञान सम्पादन करने में कुशल और धर्मशास्त्रों का ज्ञाता-इस प्रकार के गुणों से युक्त ही मनुष्य 'गुरु' हो सकते हैं, अन्यथा दोषवृत्तिवाले नहीं हो सकते।'

सर्वशास्त्रपरो दक्षः वेद-वेदार्थवित् सदा ।
सुवचाः सुन्दरः स्वङ्गः कुलीनः शुभदर्शनः ॥
जितेन्द्रियः सत्यवादी ब्राह्मणः शान्तमानसः ।
पितृ-मातृहिते युक्तः सर्वकर्मपरायणः ॥
आश्रमी देशवासी च गुरुरित्यभिधीयते ॥
(गुरुगीता)

'सर्वशास्त्रवेत्ता, चतुर, वेद-वेदार्थज्ञाता, प्रियभाषी, सुन्दर और सर्वाङ्गपरिपूर्ण, कुलीन, शुभदर्शनप्रद, जितेन्द्रिय, सत्यवादी, ब्राह्मण, शान्तचित्त, पिता-माता के हित में तत्पर, समस्त कर्मों में कुशल, आश्रम-युक्त और भारतवर्षनिवासी जो हो, वही 'गुरु' कहा जाता है।'

निन्दनीय गुरु

श्वित्री चैव गलित्कुष्ठी नेत्ररोगी च वामनः ।
कुनखी श्यामदन्तश्च स्त्रीजितो ह्यधिकाङ्क्षकः ॥
हीनाङ्गः कपटी रोगी बह्वाशी बहुजल्पकः ।
एतैर्दोषैर्विहीनो यः स गुरुः शिष्यसम्मतः ॥

'सफेद कुष्ठवाला, गलित कुष्ठवाला, नेत्र रोगवाला, बौना आदमी, खराब नखोंवाला, काले दातोंवाला, स्त्री के वश में रहनेवाला, अधिकाङ्क्षवाला, अङ्गहीन, कपटी, रोगी, अधिक भोजी और अधिक बोलनेवाला, इन दोषों से जो रहित हो वही शिष्य के लिये 'गुरु' होनें का अधिकारी है ।'

गुरुका महत्त्व

गुरुः पिता गुरुर्माता गुरुर्देवो गुरुर्गतिः ।
शिवे रुष्टे गुरुस्त्राता गुरौ रुष्टे न कश्चन ॥
(गुरुगीता)

'इस संसार में गुरु ही माता, पिता, देवता और गति है । क्योंकि अपराधवश शिव के नाराज होने पर शिष्य को गुरु रक्षा कर सकता है, किन्तु गुरु के रुष्ट होने पर उसकी कोई भी रक्षा नहीं कर सकता ।'

गुरुरेव शिवः साक्षात् गुरुः सर्वार्थसाधकः ।
गुरुरेव परं तत्त्वं सर्वं गुरुमयं जगत् ॥
गुरुरित्यक्षरं यस्य जिह्वाग्रे देवि ! वर्त्तते ।
तस्य किं विद्यते मोहः पाठैर्वेदस्य किं वृथा ॥

ध्यानमूलं गुरोर्मूर्तिः पूजामूलं गुरोः पदम् ।
मन्त्रमूलं गुरोर्वाक्यं सिद्धिमूलं गुरोः कृपा ॥
गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः ।
गुरुस्तीर्थं गुरुर्यज्ञो गुरुर्दानं गुरुस्तपः ॥
गुरुरग्निर्गुरुः सूर्यः सर्वं गुरुमयं जगत् ॥
किं दानेन किं तपसा किमन्यत्तीर्थसेवया ।
श्रीगरोरर्चितौ येन पादौ तेनार्चितं जगत् ॥
ब्रह्माण्डभारमध्ये तु यानि तीर्थानि सन्ति वै ।
गुरोः पादतले तानि निवसन्ति हि सन्ततम् ॥
गुरोः पादोदकं यस्तु नित्यं पिवति मानुषः ।
धर्मार्थकाममोक्षाणामधिपो जायते च सः ॥
गुरोरन्नं महादेवि ! यस्तु भक्षणमाचरेत् ।
कोटिजन्मार्जितं पापं तत्क्षणात्तस्य नश्यति ॥

(तन्त्रशास्त्र)

'गुरु ही साक्षात् शिव हैं, गुरु ही सर्वकार्य-साधक हैं, गुरु ही परम तत्त्व हैं, अतएव यह सम्पूर्ण जगत् गुरुमय है। हे देवि ! 'गुरु' यह दो अक्षर जिस मनुष्य के हर समय जिह्वाग्र में रहता है, उसकी मोह-माया नहीं हो सकती । गुरु-भक्त को वेद-स्वाध्याय की भी कोई खास जरूरत नहीं है। ध्यान का मूल कारण गुरु की मूर्ति और पूजा का मूल कारण गुरुचरण-कमल है। गुरु का वाक्य मूल मन्त्र और गुरु की कृपा सिद्धि का मूल है। गुरु ही ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, पर-ब्रह्म हैं, ऐसे गुरु को बार-बार प्रणाम है। गुरु ही तीर्थ, यज्ञ, दान, परम तप, अग्नि, सूर्य, किंबहुना सम्पूर्ण जगत् ही गुरुमय है। दान और तप करने से तथा अन्य तीर्थाटनों से क्या सिद्धि है ? जिस पुरुष ने श्रीगुरु-चरणों की पूजा की है, उसने सम्पूर्ण जगत् की पूजा की।

ब्रह्माण्डभर में जितने तीर्थ हैं वे सब श्रीगुरुचरणों में निरन्तर निवास करते हैं। जो मनुष्य गुरु-चरणोदक का नित्य पान करता है वह धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति करता है। हे महादेवि! गुरु के अन्न को जो भक्षण करता है उसके करोड़ों जन्म के सञ्चित किए हुए पाप तत्क्षण नष्ट हो जाते हैं।'

गुरुरेव परं ब्रह्म गुरुरेव परा गतिः।
गुरुरेव परा विद्या गुरुरेव परायणम्॥
गुरुरेव परा काष्ठा गुरुरेव परं धनम्।
यस्मात्तदुपदेष्टासौ तस्माद् गुरुतरो गुरुः॥

(अद्वयतारकोपनिषत्)

गुरुपूजनकी आवश्यकता

गुरु की महिमा अनन्त और अवर्णनीय है। अतएव हमारे धर्म-ग्रन्थों में गुरु को ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर और साक्षात् परब्रह्म तक कहा है—

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात्परब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः॥

(देवीभागवत ११।१।४१, गर्गसंहिता ४।१।१४)

गुरुरेव परं तत्त्वम्, नास्ति तत्त्वं गुरोः परम्, सर्वदेवमयो गुरुः, गुरुरेव परं ब्रह्म, गुरुरेव शिवः साक्षात्—आदि के द्वारा स्पष्ट है कि शिष्य के लिये गुरु ही परम तत्त्व, सर्वदेवमय, परब्रह्म और साक्षात् शिव हैं। अतएव वेदादि समस्त शास्त्रों में गुरुपूजन का विशेष महत्त्व लिखा है।

किं दानेन किं तपसा किमन्यत्तीर्थसेवया ।
श्रीगुरोरर्चितौ येन पादौ तेनार्चितं जगत् ॥

(तन्त्रशास्त्र)

'दान और तप करने से तथा तीर्थसेवन करने से कोई लाभ नहीं होता , किन्तु जिस पुरुष ने श्रीगुरुचरणों की पूजा की है, उसने सम्पूर्ण जगत् की पूजा की ।'

न स्नानेन न होमेन नैवाग्निपरिचर्यया ।
ब्रह्मचारी दिवं याति स याति गुरुपूजनात् ॥

(शंखः)

'स्नान, हवन और अग्निसेवन करने से ब्रह्मचारी स्वर्गलोक में नहीं जाता, किन्तु गुरुपूजन करने से स्वर्गलोक में जाता है ।'

'गुरुमभ्यर्च्य वर्धन्ते आयुषा यशसा श्रिया ।'

(महाभारत, अनुशासनपर्व १६२।४)

'गुरु के पूजन करने से शिष्य की आयु, यश और लक्ष्मी की वृद्धि होती है ।'

शिष्य के लिये गुरु का पद अपने पिता-माता से भी श्रेष्ठ है, अतः शिष्य को गुरु का पूजन विशेषरूप से करना चाहिये, यह स्पष्ट लिखा है—

जन्महेतू हि पितरौ पूजनीयौ प्रयत्नतः ।
गुरुर्विशेषतः पूज्यो धर्माधर्मप्रदर्शकः ॥

(कुलार्णव)

'माता और पिता जन्म देने में कारण हैं अतः प्रयत्नपूर्वक इनकी पूजा करनी चाहिये, किन्तु धर्माधर्म के प्रदर्शक गुरु हैं, इसलिये उनकी पूजा विशेषरूप से करनी चाहिये ।'

शिष्य के लिये गुरुपूजा आवश्यक है। जो शिष्य गुरु की पूजा किये बिना अन्य जो कुछ धर्म-कर्म करते हैं वे सब व्यर्थ हो जाते हैं। इसी बात को जगदम्बा पार्वती ने भी भगवान् शिवजी से कहा है—

गुरुभक्तेः परं नास्ति भक्तिशास्त्रेषु सर्वतः।
गुरुपूजां बिना नाथ कोटिपुण्यं वृथा भवेत् ॥

(रुद्रयामल)

'सम्पूर्ण भक्तिशास्त्रों में गुरु की भक्ति से बढ़कर और कोई दूसरी भक्ति नहीं है। इसलिये हे नाथ ! गुरुपूजा किये बिना शिष्य के करोड़ों प्रकार के सञ्चित पुण्य सब व्यर्थ हो जाते हैं।'

अतः शिष्य को प्रतिदिन गुरु की पूजा करनी चाहिये। जो शिष्य प्रतिदिन गुरु की पूजा नहीं कर सकते, उन्हें गुरु के जन्म के दिन गुरु-जयन्ती और आषाढ़ शुक्ला पूर्णिमा (गुरु-पूर्णिमा) को गुरु-पूजा अवश्य करनी चाहिये।

गुरु-पूर्णिमा को 'व्यास-पूर्णिमा' कहा जाता है। आज का दिन भगवान् व्यासजी का स्मृति-दिन है। व्यासजी ने आज के ही दिन अपने शिष्यों को पढ़ाना प्रारम्भ किया था। अतः गुरु-पूर्णिमा के दिन गुरु की पूजा करना वस्तुतः व्यासजी का ही पूजन करना है। गुरु-पूर्णिमा के दिन गुरु-पूजा करने का शास्त्रों में जो आदेश है, वह 'व्यास-पूजन' का ही अङ्ग है। इसलिये प्रत्येक मनुष्य को गुरु के रूप में व्यास-पूजन करना चाहिये। व्यास की पूजा करना वस्तुतः नर, नारायण और सरस्वती—इन तीनों का एक साथ पूजन करना है। इसी दृष्टि से मूर्ति (प्रतिमा) के रूप में नारायण की, पूजा-पाठ के रूप में सरस्वती की और नर-रूप (गुरु-रूप) में व्यास की पूजा करने का विशेष विधान शास्त्रों में पाया जाता है।

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥

(श्रीमद्भागवत १।२।४)

जिस प्रकार पुराणों में व्यासजी का 'दिव्य-दृष्टि' देना प्रसिद्ध है, उसी प्रकार शास्त्रों में गुरु का शिष्य को 'चक्षु-दृष्टि' (ज्ञान-दृष्टि) देना भी प्रसिद्ध है। गुरु अपने ज्ञानोपदेश के द्वारा शिष्य की ज्ञान-दृष्टि को खोलकर उसका कल्याण करता है, अतएव शास्त्रों में गुरु के लिये कहा गया है—

अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः॥
(नारदपुराण १।६५।५६)

गुरुके जन्मदिनमें गुरु-जयन्ती मनाना चाहिये

हिन्दू-जाति में जिस प्रकार प्रतिवर्ष भगवान् राम, कृष्ण आदि की जयन्ती बड़े उत्साह और समारोह के साथ मनायी जाती है, उसी प्रकार शिष्य को अपने परब्रह्म परमेश्वरस्वरूप गुरु के जन्म-दिवस पर प्रतिवर्ष श्रद्धा-भक्ति से 'गुरु-जयन्ती' महोत्सव मनाना चाहिये।

गुरोस्तु जन्मदिवसे कुर्यादुत्सवमादरात्।
व्याप्ते दूरगते पूज्यं पूजयेदग्रजादिषु।
एकदेशे नित्यसेवा दूरस्थे योजनक्रमात्॥
एकादि ऋतुसंवृद्धया वर्षे षड्योजनान्तरे।
ततोऽदूरगते सेवा तदाज्ञापरिपालनम्॥
आसनं शयनं वस्त्रं भूषणं पादुकां तथा।
छायाकलत्रमन्यस्य यत्तस्येष्टं तु पूजयेत्॥
एकग्रामे पृथक् पूजां न कुर्यादननुज्ञया।
पूजामध्ये समायाते पूज्ये नत्वा स्थितिं वदेत्॥

विधेहि शेषमित्युक्तः कुर्यान्नो चेत्तदाज्ञया ।
वर्तेत सोऽपि तच्छेषं कुर्यान्निश्चलमानसः ॥
पूजामध्ये गुरौ पूज्ये त्वन्ये वाऽपि समागते ।
कृत्यमेवं समुद्दिष्टं मौनं तैर्न समाचरेत् ॥
गुरुं न मर्त्यं बुध्येत यदि बुध्येत तस्य तु ।
न कदापि भवेत् सिद्धिर्मन्त्रैर्वा देवपूजनैः ॥

(तन्त्रराज)

'गुरु के जन्मदिन पर आदरपूर्वक उत्सव मनाना चाहिये । यदि गुरु दूरस्थ हों तो उनके बड़े भाइयों में जो पूज्य हों उनकी पूजा करे । यदि गुरु और शिष्य एक ही स्थान पर हों तो गुरु की नित्य सेवा करनी चाहिये । यदि योजन-क्रम से गुरु दूरस्थ हों तो प्रत्येक ऋतु में पूजा करनी चाहिये और यदि छः योजन अर्थात् चौबीस कोश की दूरी पर हों तो प्रतिवर्ष पूजा करनी चाहिये । यदि छः योजन से भी अधिक दूरी पर हों तो उनकी आज्ञा का पालन करना ही गुरु की सेवा है । गुरु के दूरस्थ होने पर आसन, शयन, वस्त्र, आभूषण, पादुका, चित्र तथा उनकी पत्नी इनमें गुरु को जो अधिक प्रिय हों, उनकी पूजा करनी चाहिये । यदि एक ही ग्राम में गुरु और शिष्य का निवास हो तो बिना गुरु की आज्ञा से उनकी पूजा नहीं करनी चाहिये । यदि गुरु की पूजा के समय कोई अन्य पूज्य व्यक्ति आ जाय तो उन्हें प्रणाम करके उनकी निवास के विषय में पूछ-ताछ करनी चाहिये । यदि गुरु की आज्ञा हो कि आगन्तुक पूज्य व्यक्ति के शेष कार्य को करो तो शेष कार्य का सम्पादन करे । यदि आज्ञा न हो तो न करे । आज्ञा होने पर शेष कार्य का सम्पादन निश्चल मन से करना चाहिये । गुरु की पूजा के मध्य में कोई पूज्य या अन्य व्यक्ति के आ जाने पर जो कृत्य हो उसे करना चाहिये, उनसे मौन नहीं रहना चाहिये । गुरु को साधारण मनुष्य नहीं समझना चाहिये । यदि वह गुरु को साधारण

मनुष्य ही मानता है तो उसकी मन्त्र तथा देवपूजनादि से कदापि सिद्धि नहीं होगी।'

शिष्य-शब्दार्थ

श्रुतं करोति शुश्रूषां कायेन मनसा गिरा।
उक्तं यद् गुरुणा पूर्वं शक्यं वा शक्यमेव च ॥
करोत्येवं हि पूतात्मा प्राणैरपि धनैरपि।
तस्माद् वै शासने योग्यः शिष्य इत्यभिधीयते ॥

(शिवपुराण, विद्येश्वरसंहिता १८।८७, ८८)

'गुरु की आज्ञा को सुनते ही चाहे वह शक्य या अशक्य हो, उसे जो शिष्य शरीर, मन, वचन से सेवा करता है, साथ ही पवित्रात्मा होकर प्राण और धन से आज्ञा का पालन करता है, वही शासन करने के योग्य हैं और उसी को शिष्य कहा जाता है।'

प्रशंसनीय शिष्य

अस्तेयं वृत्तिमास्तिक्यं वृत्तियुक्तं कृतोद्यमम्।
ब्रह्मचर्यरतं नित्यं दृढव्रतमकल्मषम् ॥
प्रसन्नहृदयं शुद्धमशठं विमलाऽऽशयम्।
परोपकारनिरतं स्वार्थे च विगतस्पृहम् ॥
स्वचित्तवित्तदेहैस्तु परितोषकरं गुरोः।
आश्रितानां तथा पुत्रं परितोषकरं शुचिम् ॥
ईदृग् विधाय शिष्याय मन्त्रं दद्यात्तु नान्यथा।
यद्यन्यथा वदेत् तस्मिन् देवताशाप आपतेत् ॥

(स्कन्दपुराण, वैष्णवखण्डान्तर्गत–मार्गशीर्षमाहात्म्य, अध्याय १६)

'चोरी न करने की वृत्तिवाले, आस्तिक्य भाववाले, उद्योग करनेवाले, ब्रह्मचर्य व्रत को धारण करनेवाले, ब्रह्मचर्यादि व्रत में सर्वदा दृढ़ रहनेवाले, पापकर्म से दूर रहनेवाले, प्रसन्न हृदयवाले, स्वच्छता से रहनेवाले, सरल व्यवहारवाले, शुद्ध अन्तःकरणवाले, परोपकार में तत्पर रहनेवाले, स्वार्थ की इच्छा न रखनेवाले, तन, मन, धन से गुरु को सन्तुष्ट करनेवाले, अपने आश्रितों तथा पुत्रादिकों को सन्तुष्ट करनेवाले—इस प्रकार के अधिकारी को शिष्य बनाकर उसको गुरु दीक्षामन्त्र का उपदेश करे और अनधिकारी को मन्त्रोपदेश न करे। यदि गुरु उपर्युक्त गुणों से रहित शिष्य को मन्त्र देता है, तो उसे देवता शाप देते हैं।'

शान्तो विनीतः शुद्धात्मा सर्वलक्षणसंयुतः ।
शमादिसाधनोपेतः श्रद्धावान् सुस्थिराशयः ॥
शुद्धदेहोऽन्नपानाद्यैर्धार्मिकः शुद्धमानसः ।
दृढव्रतः समाचारः कृतज्ञः पापभीरुकः ॥
गुरुध्यानस्तुतिकथासेवनासक्तमानसः ।
एवंविधो भवेच्छिष्यस्त्वन्यथा गुरुदुःखदः ॥

(बृहन्नारदपुराण, पूर्वार्ध ६४। ६८-७०)

'शान्त स्वभाव, विनीत, शुद्धात्मा, सभी लक्षणों से युक्त, शमादि-षट्सम्पत्तियुक्त, श्रद्धालु, दृढ़प्रतिज्ञ, खान-पानादि से शुद्ध शरीर-वाला, धार्मिक, शुद्ध मनवाला, दृढ़व्रती, समान आचरण करनेवाला, कृतज्ञ, पाप से डरनेवाला तथा गुरु के ध्यान-स्तुतिचर्चा एवं सेवादि में संसक्त मनवाला यदि शिष्य हो तो वह उत्तम है, इसके विपरीत शिष्य गुरु को दुःख देनेवाला होता है।'

शान्तो विनीतः शुद्धात्मा श्रद्धावान् धारणक्षमः ।
समर्थश्च कुलीनश्च प्राज्ञः सच्चरितो व्रती ॥

एवमादिगुणैर्युक्तः शिष्यो भवति नान्यथा ।

(दीक्षाप्रकाश)

'शान्त, विनीत, शुद्धान्तःकरणवाला, श्रद्धावाला, तत्त्व को ग्रहण करनेवाला, समर्थ, कुलीन, बुद्धिमान्, सच्चरित्र और व्रती इत्यादि गुणों से युक्त ही शिष्य बन सकता है, अन्यथा नहीं ।'

अलुब्धः स्थिरगात्रश्च आज्ञाकारी जितेन्द्रियः ।
आस्तिको दृढभक्तिश्च गुरौ मन्त्रे च दैवते ॥
एवंविधो भवेच्छिष्य इतरो दुःखकृद् गुरोः ॥

(तन्त्रराज)

'लोभहीन, स्थिरगात्रवाला, गुरु का आज्ञाकारी, जितेन्द्रिय तथा गुरु, मन्त्र और देवता में दृढ़ भक्ति रखनेवाला—इन गुणों से जो युक्त हों वे ही शिष्य होने को अधिकारी हैं, अन्यथा इन गुणों से रहित मनुष्य गुरु के लिये दुःखदायी होते हैं ।'

निन्दनीय शिष्य

अलसं मलिनं क्लिष्टं दम्भ-मोहसमन्वितम् ।
दरिद्रं रोगिणं क्रुद्धं रागिणं भोगलालसम् ॥
असूयामत्सरग्रस्तं शठं परुषवादिनम् ।
अन्यायेनार्जितधनं परदाररतं सदा ॥
विदुषां वैरिणं नित्यमज्ञपण्डितमानिनम् ।
भ्रष्टव्रतं क्लिष्टवृत्तिं पिशुनं दुष्टमानसम् ॥
बह्वाशिनं क्रूरचेष्टमग्रगण्यं दुरात्मनाम् ।
कृपणं पापिनं रौद्रमाश्रितानां भयङ्करम् ॥

इत्यादिदोषसंयुक्तं शिष्यं नैव परिग्रहेत् ।
गृह्णीयाद् यदि तद्दोषः प्रायो गुरुं समुस्पृशेत् ॥
अमात्यदोषो राजानं जायादोषः पतिं यथा ।
तथा शिष्यकृतो दोषो गुरुं प्राप्नोत्यसंशयम् ॥
तस्माच्छिष्यं गुरुर्नित्यं परीक्ष्यैव परिग्रहेत् ।

(स्कन्दपुराण, वैष्णवखण्डान्तर्गत-मार्गशीर्षमाहात्म्य, अध्याय ५)

'आलसी, मलिन, कठोर, दम्भ-मोह से युक्त, दरिद्र, रोगी, क्रोधी, रागी, भोगी, असूया—मत्सर-ग्रस्त, शठ, कठोरभाषी, अन्याय से धनार्जन करनेवाला, परस्त्रीरत, विद्वानों का शत्रु, नित्य अज्ञान से युक्त, अपने को पण्डित माननेवाला, भ्रष्टव्रती, कठोर व्यवहारवाला, दुष्टों में अग्रणी, कृपण, पापी, भयानक स्वरूपवाला, आश्रितों के लिये भयानक इत्यादि उपर्युक्त दोषों से ग्रसित शिष्यों को ग्रहण नहीं करना चाहिये। मन्त्री का दोष राजाको और स्त्री का दोष पति को प्राप्त होता है। ठीक इसी प्रकार शिष्य का दोष गुरु को प्राप्त होता है, इसमें कोई सन्देह नहीं। अतः गुरु को चाहिये कि वे शिष्य का ग्रहण परीक्षा करके ही करें।'

दीक्षित शिष्यके आवश्यक नियम

क्षमा सत्यं दया दानं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
देवपूजाऽग्निहवनं सन्तोषः स्तेयवर्जनम् ॥
सर्वव्रतेष्वयं धर्मः सामान्यो दशधा स्थितः ।

(भविष्यपुराण)

'क्षमा, सत्य, दया, दान, पवित्रता, जितेन्द्रियता, देवपूजन, अग्नि-परिचर्या, सन्तोष और चोरी न करना—इन दस प्रकार के धर्मों का दीक्षित शिष्य को पालन करना चाहिये।'

ब्रह्मचर्यमहिंसा च सत्यमामिषवर्जनम् ।
व्रतेष्वेतानि चत्वारि चरितव्यानि नित्यशः ॥
(देवलः)

'दीक्षित व्यक्ति को ब्रह्मचर्य, अहिंसा और सत्य का पालन तथा मांस का परित्याग—इन चारों का पालन सर्वदा करना चाहिये ।'

'मद्यस्य मद्यगन्धस्य वर्णमात्रेषु वर्जनम् ।'
(शिवपुराण)

'चारों वर्णों को, विशेषतः मनुष्यों को कदापि मद्य का सेवन या उसके गन्ध का आस्वादन तक नहीं करना चाहिये ।'

सत्य बोलना, चोरी न करना, शुद्धता से रहना, इन्द्रियों के वशीभूत न होना, ब्रह्मचर्य का पालन करना, सदाचारी बनना, जुआ न खेलना, मद्य-मांस का त्याग करना, दम, दया, सन्तोष, नम्रता, ज्ञान, ईश्वर-भक्ति, देवता, गुरु, माता, पिता और धर्म में दृढ़ भक्ति, उत्साह, धैर्य और परोपकारादि व्रत का परिपालन करना, आयु, आरोग्य, यश, बुद्धि, लक्ष्मी और तेज आदि की वृद्धि के लिये सर्वदा प्रयत्नशील रहना चाहिये । (शिवपुराण)

दीक्षार्थ मास और उनका फल

मन्त्रारम्भस्तु चैत्रे स्यात् समस्तपुरुषार्थदः ।
वैशाखे रत्नलाभः स्याज्ज्येष्ठे च मरणं भवेत् ॥
आषाढे बन्धुनाशः स्यात् पूर्णायुः श्रावणे भवेत् ।
प्रजानाशो भवेद् भाद्रे आश्विने रत्नसञ्चयः ॥
कार्तिके मन्त्रसिद्धिः स्यान्मार्गशीर्षे तथा भवेत् ।

पौषे तु शत्रुपीडा स्यात् माघे मेधाविवर्जनम् ॥
फाल्गुने सर्वकामाः स्युः मलमासं विवर्जयेत् ।

(तन्त्रसार)

'चैत्र में पुरुषार्थ की सिद्धि, वैशाख में रत्न की प्राप्ति, ज्येष्ठ में मृत्यु, आषाढ़ में बन्धु का नाश, श्रावण में दीर्घायु की प्राप्ति, भाद्रपद में सन्तति की हानि, आश्विन में रत्न का सञ्चय, कार्तिक में मन्त्र की सिद्धि, मार्गशीर्ष में मन्त्र की सिद्धि, पौष में शत्रु के द्वारा पीड़ा, माघ में बुद्धि को वृद्धि और फाल्गुन में दीक्षा लेने से समस्त मनोरथों की सिद्धि होती है। मलमास में दीक्षा लेने का निषेध है।'

'ज्येष्ठे मृत्युप्रदा चैव आषाढे धनसम्पदः।'

(योगिनीहृदय)

'ज्येष्ठ मास में दीक्षा मृत्युदायिनी तथा आषाढ़ मास में धनसम्पत्ति को प्रदान करती है।'

शरत्काले च वैशाखे दीक्षा श्रेष्ठफलप्रदा।
फाल्गुने मार्गशीर्षे च ज्येष्ठे दीक्षा च मध्यमा ॥

(योगिनीदर्पण)

'शरत्काल में और वैशाख में दीक्षा श्रेष्ठ फल को देनेवाली होती है। फाल्गुन, मार्गशीर्ष और ज्येष्ठ मास में दीक्षा मध्यम फल को देनेवाली कही गई है।'

वैशाखे श्रावणे वापि आश्विने कार्तिके तथा।
फाल्गुने मार्गशीर्षे वा कुर्यान्मान्त्रीयदीक्षणम् ॥

(पुरश्चरणपद्धति)

'वैशाख, श्रावण, आश्विन, कार्तिक, फाल्गुन या मार्गशीर्ष में मन्त्र की दीक्षा देनी चाहिये।'

दीक्षार्थ पक्षका विचार

शुक्लपक्षे शुभा दीक्षा कृष्णेऽप्यापञ्चमी तथा ।
निषिद्धमासे न तथा विशेषो दिनभेदतः ॥

'शुक्ल पक्ष में तथा कृष्ण पक्ष की पञ्चमी तिथि तक की दीक्षा शुभ मानी गयी है, किन्तु दीक्षार्थ जो मास निषिद्ध है उस मास के शुक्ल पक्ष की समस्त तिथियाँ तथा कृष्ण पक्ष की पञ्चमी तिथि तक दिन के भेद के दीक्षार्थ शुभ नहीं होती हैं।

दीक्षार्थ तिथि और उनका फल

प्रतिपत्सु कृता दीक्षा ज्ञाननाशकरी मता ।
द्वितीयायां भवेज्ज्ञानं तृतीयायां शुचिर्भवेत् ॥
चतुर्थ्यां धननाशः स्यात् पञ्चम्यां बुद्धिवर्धनम् ।
षष्ठ्यां ज्ञानक्षयः सौख्यं लभते सप्तमीदिने ॥
अष्टम्यां बुद्धिनाशः स्यान्नवम्यां वपुषः क्षयः ।
दशम्यां राजसौभाग्यमेकादश्यां शुचिर्भवेत् ॥
द्वादश्यां सर्वसिद्धिः स्यात् त्रयोदश्यां दरिद्रता ।
तिर्यग्योनिश्चतुर्दश्यां कृमिर्मासावसानके ॥
पक्षान्ते धर्मवृद्धिः स्यादस्वाध्यायं विवर्जयेत् ।
सन्ध्यागर्जितनिर्घोषभूकम्पोल्कानिपातनम् ॥
एतानन्यांश्च दिवसान् श्रुत्युक्तान् परिवर्जयेत् ।
द्वादश्यामपि कर्तव्यं [1]त्रयोदश्यामथापि वा ॥
(आगमकल्पद्रुम)

---

१. (क) त्रयोदशी-द्वादशीविधानं विष्णुविषयम् ।
(ख) 'त्रयोदशी च दशमी प्रशस्ता सर्वकर्मसु ।' (सनत्कुमारः)

'प्रतिपदा को ज्ञान का नाश, द्वितीया को ज्ञान की वृद्धि, तृतीया को शुद्धता की प्राप्ति, चतुर्थी को धन का नाश, पञ्चमी को बुद्धि की वृद्धि, षष्ठी को ज्ञान का नाश, सप्तमी को सुख की प्राप्ति, अष्टमी को बुद्धि की हानि, नवमी को शरीर की हानि, दशमी को राज-सौभाग्य की प्राप्ति, एकादशी को पवित्रता, द्वादशी को समस्त कार्यों में सिद्धि, त्रयोदशी को दरिद्रता, चतुर्दशी को तिर्यक्योनि (पशुयोनि) की प्राप्ति, मास के अन्त (पूर्णिमा तिथि) में हानि और पक्षान्त (अमावास्या तिथि) में दीक्षा लेने से धर्म की वृद्धि होती है। जिन दिनों में वेदपाठ निषिद्ध है उन दिनों में भी दीक्षा-ग्रहण त्याज्य है। सन्ध्याकाल में यदि मेघ-गर्जन हो, भूकम्प हो, उल्कापात हो तो इन समयों में और श्रुतिविहित निषिद्ध दिनों में दीक्षा-कार्य त्याग देना चाहिये। द्वादशी और त्रयोदशी तिथि में भी दीक्षा-कार्य सम्पन्न करना चाहिये।'

'त्रयोदशी च दशमी प्रशस्ता सर्वकामदा।'

(सनत्कुमारः)

'त्रयोदशी तथा दशमी तिथि दीक्षा के लिये प्रशस्त मानी गयी हैं और यह समस्त कामनाओं को पूर्ण करनेवाली हैं।'

सप्तम्यां च नवम्यां वा एकादश्यामथापि वा।
दशम्यां च त्रयोदश्यां दीक्षाकर्म प्रशस्यते॥

(सुप्रभेदे)

'सप्तमी, नवमी, दशमी, एकादशी अथवा त्रयोदशी को दीक्षाकर्म प्रशस्त कहा गया है।'

दीक्षार्थ प्रसिद्ध और पर्वकी तिथि श्रेष्ठ कही गयी हैं

प्रसिद्धास्तिथयो राहु-दर्शनं गुरुपर्व च।
पवित्रका तिथिश्चापि दीक्षाकर्मविधौ वरा॥

(क्रियाकाण्डशेखरे)

'प्रसिद्ध तिथियों (द्वितीया, तृतीया, पञ्चमी, दशमी, एकादशी तथा द्वादशी में एवं ग्रहण में, गुरुपर्व अर्थात् आषाढ़ शुक्ल गुरुपूर्णिमा में, पवित्रका तिथि अर्थात् श्रावण शुक्ल पूर्णिमा तिथिमें दीक्षा-ग्रहण शुभ है।'

दीक्षार्थ वार और उनका फल

रविवारे भवेद् वित्तं सोमे शान्तिर्भवेत् किल।
आयुरङ्गारके हन्ति तत्र दीक्षां विवर्जयेत्॥
बुधे सौन्दर्यमाप्नोति ज्ञानं स्याच्च बृहस्पतौ।
शुक्रे सौभाग्यमाप्नोति यशोहानिः शनैश्चरे॥

'रविवार को धन की प्राप्ति, सोमवार को शान्ति की प्राप्ति, मङ्गलवार को आयु का क्षय, बुधवार को सौन्दर्य की प्राप्ति, गुरुवार को ज्ञान की वृद्धि, शुक्रवार को सौभाग्य की प्राप्ति और शनिवार को दीक्षा लेने से कीर्ति की हानि होती है।'

गुरुवारे सुखं विद्याच्छक्तेश्चार्कः प्रशस्यते।
शैवे तु गुरुवारः स्यात्सौरे चन्द्रः प्रशस्यते॥
बुधे तु सकला दीक्षा मरणं शनिभौमके।

(गरुडतन्त्र)

'गुरुवार को दीक्षा-ग्रहण करने में सुख की प्राप्ति होती है। शक्ति-दीक्षा में रविवार प्रशस्त है। शैव-दीक्षा में गुरुवार और सौर-दीक्षा में सोमवार प्रशस्त माना गया है। बुधवार को समस्त दीक्षाएँ प्रशस्त मानी गयी हैं। शनि और भौम को दीक्षा-ग्रहण करने में मरण निश्चित है।'

रवौ गुरौ विधौ दीक्षा कर्तव्या बुधशुक्रयोः ।
मन्त्रारम्भो रवौ शुक्रे बुधे जीवे विशेषतः ॥
शनौ मृत्युः क्षयो भौमे सोमे सर्वं च निष्फलम् ।
(पुरश्चरणपद्धति)

'रवि, गुरु, सोम, बुध और शुक्र को दीक्षा-ग्रहण करना चाहिये। रवि, शुक्र, बुध तथा गुरुवार को विशेषकर मन्त्रारम्भ करना चाहिये। शनि को मृत्यु, भौम को हानि तथा सोमवार को समस्त दीक्षा का कार्य निष्फल हो जाता है।'

दीक्षार्थ नक्षत्र और उनका फल

अश्विन्यां सुखमाप्नोति भरण्यां मरणं ध्रुवम् ।
कृत्तिकायां भवेद् दुःखी रोहिण्यां वाक्पतिर्भवेत् ॥
मृगशीर्षे सुखावाप्तिरार्द्रायां बन्धुनाशनम् ।
पुनर्वसौ धनाढ्यः स्यात् पुष्ये शत्रुविनाशनम् ॥
आश्लेषायां भवेन्मृत्युर्मघायां दुःखमोचनम् ।
सौन्दर्यं पूर्वफाल्गुन्यां सम्प्राप्नोति न संशयः ॥
ज्ञानं चोत्तरफाल्गुन्यां हस्ते चैव धनी भवेत् ।
चित्रायां ज्ञानसिद्धिः स्यात् स्वात्यां शत्रुविनाशनम् ॥
विशाखायां सुखं चानुराधायां बन्धुवर्धनम् ।
ज्येष्ठायां सुतहानिः स्यान्मूले कीर्तिविवर्धनम् ॥
पूर्वाषाढोत्तराषाढे भवेतां कीर्तिदायिके ।
श्रवणे च भवेद् दुःखी धनिष्ठायां दरिद्रता ॥

बुद्धिः शतभिषायां स्यात् पूर्वभाद्रे सुखी भवेत् ।
सौख्यं तूत्तरभाद्रे च रेवत्यां कीर्तिवर्धनम् ॥

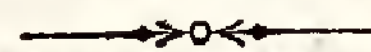
(पुरश्चरणपद्धति)

'अश्विनी में सुख की प्राप्ति, भरणी में मृत्यु की प्राप्ति, कृत्तिका में दुःख की प्राप्ति, रोहिणी में विद्या की प्राप्ति, मृगशिरा में सुख की प्राप्ति, आर्द्रा में बन्धु का नाश, पुनर्वसु में पूर्ण धन की प्राप्ति, पुष्य में शत्रु का नाश, आश्लेषा में मृत्यु की प्राप्ति, मघा में दुःख का नाश, पूर्वाफाल्गुनी में सौन्दर्य की वृद्धि, उत्तराफाल्गुनी में ज्ञान की प्राप्ति, हस्त में धन की प्राप्ति, चित्रा में ज्ञान की प्राप्ति, स्वाती में शत्रु की हानि, विशाखा में सुख की प्राप्ति, अनुराधा में बान्धव की वृद्धि, ज्येष्ठा में सन्ततिकी हानि, मूल में कीर्ति की वृद्धि, पूर्वाषाढ़ा और उत्तराषाढ़ा में कीर्ति की प्राप्ति, श्रवण में दुःख की प्राप्ति, धनिष्ठा में दरिद्रता की प्राप्ति, शतभिषा में बुद्धि की प्राप्ति, पूर्वाभाद्रपद तथा उत्तराभाद्रपद में सुख की प्राप्ति और रेवती नक्षत्र में दीक्षा लेने से कीर्ति की वृद्धि होती है।'

पूर्वाषाढे च मासे च आषाढे मृगशीर्षके ।
दीक्षां न कारयेद्धीमान् अन्यमासेषु कारयेत् ॥
शुक्लपक्षे शुभर्क्षे च सुवारतिथिभिर्युते ॥

(क्रियाकाण्डशेखर)

'आषाढ़ मास में पूर्वाषाढ़ा और मृगशिरा नक्षत्र हो तो बुद्धिमानों को दीक्षा-कार्य नहीं कराना चाहिये, अन्य मासों में भी शुक्ल पक्ष, शुभ नक्षत्र, शुभ दिन और शुभ तिथि हो तो दीक्षा कार्य करना चाहिये।



दीक्षार्थ योग और उनका फल

योगाः स्युः प्रीतिरायुष्मान् सौभाग्यः शोभनो धृतिः ।
वृद्धिर्ध्रुवः सुकर्मा च साध्यः शुक्लश्च दर्पणः ॥
वरीयांश्च शिवः सिद्धो ब्रह्मा इन्द्रश्च षोडश ॥

'ज्योतिष शास्त्र में दीक्षा लेने के लिये प्रीति, आयुष्मान्, सौभाग्य, शोभन, धृति, वृद्धि, ध्रुव, सुकर्मा, साध्य, शुक्ल, हर्षण, वरीयान्, शिव, सिद्ध, ब्रह्मा और इन्द्र—ये सोलह योग श्रेष्ठ कहे गये हैं।'

दीक्षार्थ शुभ करण

बव-बालव-कौलव-तैतिल-वणिजस्तु पञ्च ।
करणानि शुभान्येव सर्वग्रन्थेषु भाषितम् ॥

'समस्त ग्रन्थों में बव, बालव, कौलव, तैतिल और वणिज—ये पाँच करण दीक्षा लेने के लिये शुभप्रद कहे गये हैं।'

दीक्षार्थ लग्न का विचार

वृषे सिंहे च कन्यायां धनुर्मीनाख्यलग्नके ।
चन्द्रतारानुकूल्ये तु च कुर्याद्दीक्षाप्रवर्त्तनम् ॥
त्रिषडायगताः पापाः शुभाः केन्द्रत्रिकोणगाः ।
दीक्षायां तु शुभाः सर्वे वक्रस्थाः सर्वनाशकाः ॥

'वृष, सिंह, कन्या, धनु और मीन-इन पाँचों लग्नों में चन्द्रमा तथा तारा की अनुकूलता देखकर ही दीक्षा देनी चाहिये। लग्न से तृतीय, षष्ठ और एकादश स्थानों में पापग्रह तथा लग्न में और उससे चतुर्थ,

सप्तम, दशम, नवम, पञ्चम स्थान में शुभग्रह रहने से दीक्षा का ग्रहण शुभप्रद है। दीक्षा के कार्य में वक्र ग्रह सर्वनाशक होते हैं। अतः वक्र ग्रह त्याज्य हैं।'

देवताओंके भेदसे दीक्षार्थ लग्नका विचार

वृषे सिंहे च कन्यायां धनुर्मीनाख्यलग्नके।
चन्द्रतारानुकूल्ये च कुर्याद्दीक्षाप्रवर्तनम्॥
[1]स्थिरलग्नं विष्णुमन्त्रे शिवमन्त्रे [2]चरं शुभम्।
[3]द्विस्वभावगतं लग्नं शक्तिमन्त्रे प्रशस्यते॥
त्रिषडायगताः पापाः शुभाः केन्द्रत्रिकोणगाः।
दीक्षायां तु शुभाः सर्वे वक्रस्थाः सर्वनाशकाः॥

'वृष, सिंह, कन्या, धनु और मीन—इन पाँचों लग्नों में और चन्द्रतारा की अनुकूलता देखकर दीक्षा-प्रदान उचित है। वृष, सिंह, वृश्चिक और कुम्भ—ये ही स्थिर लग्न हैं, ये विष्णुमन्त्र के ग्रहण में शुभकारी हैं। चर लग्न अर्थात् मेष, कर्कट, तुला और मकर शिवमन्त्र के ग्रहण में शुभप्रद हैं। शक्ति-दीक्षा में द्विस्वभावगत लग्न अर्थात् मिथुन, कन्या, धनु और मीन मङ्गलकारी हैं। लग्न के तृतीय, षष्ठ और एकादश स्थानों में पापग्रह और लग्न में तथा उसके चतुर्थ, सप्तम, दशम, नवम और पञ्चम स्थान में शुभ ग्रह रहने से दीक्षा-ग्रहण कल्याणप्रद होता है। दीक्षा-कर्म में वक्र ग्रह सर्वनाशक होने के कारण त्याग करने योग्य हैं।'

---

१. वृष, सिंह, वृश्चिक और कुम्भको 'स्थिर लग्न' कहते हैं।

२. मेष, कर्क, तुला और मकर को 'चर लग्न' कहते हैं।

३. मिथुन, कन्या, धनु और मीन को 'द्विस्वभावगत लग्न' कहते हैं।

देवताओंकी तिथिके अनुसार दीक्षाका काल

देवराज इन्द्र ने देवर्षि नारदजी से पूछा—

'कस्य का तिथिरुद्दिष्टा विशेषं वद नारद ।'

'हे नारद ! किसके लिये कौन-सी तिथि विशेषरूप से कही गयी है, उसे आप कहें ।'

नारदजी ने उत्तर दिया—

संक्षेपेणैव दीक्षायां विशेषावसरं शृणु ॥
ब्रह्मणः पौर्णमास्युक्ता द्वादशी चक्रधारिणः ।
चतुर्दशी शिवस्योक्ता वाचः प्रोक्ता त्रयोदशी ॥
द्वितीया तु श्रियः प्रोक्ता पार्वत्याश्च तृतीयका ।
नित्यमार्गेषु पार्वत्या अष्टमी च चतुर्दशी ॥
अष्टमी गणनाथस्य भानोः प्रोक्ता तु सप्तमी ।
एवं मुख्यास्तु संक्षेपात्तिथयः परिभाषिताः ॥
(तत्त्वसारसंहिता)

'दीक्षा-कार्य में संक्षेप से विशेष अवसरों को कहा जा रहा है, उसे सुनो । ब्रह्मा की पूर्णिमा तिथि, विष्णु की द्वादशी, शिवकी चतुर्दशी, सरस्वती की त्रयोदशी, लक्ष्मी की द्वितीया, पार्वती की तृतीया और नित्य कार्य में अष्टमी तथा चतुर्दशी तिथि कही गयी है । गणेश की अष्टमी और सूर्य की सप्तमी इस प्रकार संक्षेप में प्रधान तिथि तत्तत् देवताओं की कही गयी हैं ।'

देवतुल्य पर्वकी तिथियोंमें दीक्षा-ग्रहणका विशेष महत्त्व

षष्ठी भाद्रपदे मासे त्विषे कृष्णा चतुर्दशी ।
कार्तिके नवमी शुक्ला मार्गे शुक्ला तृतीयका ॥
पौषे च नवमी शुक्ला माघे शुक्ला चतुर्थिका ।
फाल्गुने नवमी शुक्ला चैत्रे कामचतुर्दशी ॥
वैशाखे चाक्षया चैव ज्येष्ठे दशहरा तिथिः ।
आषाढे पञ्चमी शुक्ला श्रावणे कृष्णपञ्चमी ॥
एतानि देवपर्वाणि तीर्थकोटिफलं लभेत् ॥

(आगमकल्पद्रुम)

'भाद्रपद मास में षष्ठी, आश्विन में कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी, कार्तिक में शुक्ल पक्ष की नवमी, मार्गशीर्ष में शुक्ल पक्ष की तृतीया, पौष में शुक्ल पक्ष की नवमी, चैत्र में चतुर्दशी, वैशाख शुक्ल पक्ष में अक्षय तृतीया, ज्येष्ठ के शुक्ल पक्ष में गंगादशहरा, आषाढ़ में शुक्ल पक्ष की पञ्चमी और श्रावण में कृष्ण पक्ष की पञ्चमी आदि तिथियाँ देव-पर्व मानी गयी हैं। अतः इन तिथियों में दीक्षा-ग्रहण करने से कोटितीर्थ फल की प्राप्ति होती है।'

अन्यत्र भी कहा है—

चैत्रे त्रयोदशी शुक्ला वैशाखे तु हरिप्रिया ।
ज्येष्ठे चतुर्दशी कृष्णा आषाढे नागपञ्चमी ॥
श्रावणैकादशी भाद्रे रोहिणीसंयुताऽष्टमी ।
आश्विने च महापुण्या सिद्धिदा स्यान्महाष्टमी ॥
कार्तिके नवमी शुक्ला मार्गशीर्षे तथासिता ।
फाल्गुने च सिता षष्ठी चेति कालविनिर्णयः ॥

'चैत्र शुक्ला में त्रयोदशी; वैशाख में हरि की प्रिय तिथि एकादशी, ज्येष्ठ में कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी, आषाढ़ में नागपञ्चमी, श्रावण में एकादशी, भाद्रपद में रोहिणी—नक्षत्रयुक्त अष्टमी, आश्विन मास में अति पवित्र सिद्धिदायिनी महाष्टमी, कार्तिक मास में शुक्ल नवमी, मार्गशीर्ष मास में शुक्ला नवमी और फाल्गुन मास में कृष्णा षष्ठी आदि तिथियाँ दीक्षार्थ श्रेष्ठ मानी गयी हैं।'

अमावास्या सोमवारे भौमवारे चतुर्दशी ।
सप्तमी रविवारे च सूर्यपर्वशतैः समाः ॥

'सोमवार को अमावास्या, मङ्गलवार को चतुर्दशी और रविवार को सप्तमी तिथि पड़े तो ये तिथियाँ सौ सूर्यग्रहण के सदृश होती हैं।'

कुलार्णव में लिखा है—रविवार को सप्तमी, सोमवार को अमावास्या, मङ्गलवार को चतुर्थी और गुरुवार को अष्टमी तिथि पड़ जाय, तो वह देवतुल्य पर्व होता है। अतः इन देवतुल्य पर्व की तिथियों में दीक्षा-ग्रहण अत्यन्त प्रशस्त कहा गया है।

मन्वादि तथा युगादि तिथियोंमें दीक्षा-ग्रहणका महत्त्व

'मन्वाद्यासु[1] युगाद्यासु[2] दीक्षा सर्वसमृद्धिदा ।'
(यामलः)

---

१. चैत्र शुक्ल पक्ष की तृतीया और पूर्णिमा, ज्येष्ठ शुक्ल पक्ष की पूर्णिमा, आषाढ़ शुक्ल पक्ष की दशमी और पूर्णिमा, श्रावण कृष्ण पक्ष की अष्टमी और अमावास्या, भाद्रपद शुक्ल पक्ष की तृतीया, आश्विन शुक्ल पक्ष की नवमी, कार्तिक शुक्ल पक्ष की द्वादशी और पूर्णिमा, पौष शुक्ल पक्ष की एकादशी, माघ शुक्ल पक्ष की सप्तमी और फाल्गुन शुक्ल पक्ष की पूर्णिमा—ये मन्वादि तिथियाँ कही जाती हैं।

२. वैशाख शुक्ल पक्ष की तृतीया, भाद्रपद कृष्ण पक्ष की त्रयोदशी और कार्तिक शुक्ल पक्ष की नवमी और माघ कृष्ण पक्ष की अमावास्या—ये युगादि तिथियाँ कही जाती हैं।

'मन्वाद्यादि तथा युगाद्यादि तिथियों में दीक्षा लेने से वह समस्त समृद्धियों को देती हैं।'

मन्वन्तरासु सर्वासु महापूजादिने तथा।
[1]चतुर्थी पञ्चमी चैव [2]चतुर्दश्यष्टमी तथा॥
तिथयः शुभदाः प्रोक्ताः ··· ··· ··· ···॥

(योगिनीतन्त्र)

'समस्त मन्वन्तरों में और भगवान् की महापूजा के दिन एवं चतुर्थी, पञ्चमी, चतुर्दशी तथा अष्टमी—ये तिथियाँ दीक्षाग्रहणार्थ शुभ-प्रद कही गयी हैं।'

शुक्रास्तादिमें भी दीक्षा-ग्रहण शुभ है

शुक्रास्ते यदि वा वृद्धो गुर्वादित्यो भवेद्यदि।
मेषवृश्चिकसिंहेषु तदा दोषो न विद्यते॥

(वाराहीतन्त्र)

'शुक्रास्त में अथवा शुक्र–वार्धक्य में यदि गुर्वादित्य हों अर्थात् गुरु और सूर्य दोनों एक ही राशि पर हों तब मेष, वृश्चिक और सिंह की संक्रान्ति में दीक्षा–कर्म शुभ होता है। इनमें दीक्षा-ग्रहण में कोई दोष नहीं होता।'

सूर्यग्रहणमें दीक्षा-ग्रहणका महत्त्व

निन्द्यादिष्वपि कालेषु दीक्षोक्ता ग्रहणे शुभा।
सूर्यग्रहणकालेन समानो नास्ति भूतले॥
तत्र यद्यत्कृतं सर्वमनन्तफलदं भवेत्॥

---

१. चतुर्थी तिथि गणेश-दीक्षा के लिये कही गयी है।

२. चतुर्दशी और अष्टमी शक्ति-दीक्षा के लिये कही गयी है।

'निन्दित समयों में भी यदि ग्रहण में दीक्षा ली जाय, तो वह शुभदा होती है। इस संसार में सूर्यग्रहण के समान दीक्षा-ग्रहण के लिये और कोई उत्तम समय नहीं है। अतः सूर्यग्रहण के शुभावसर पर जो कार्य किये जाते हैं, वे सब अनन्त फलों को देनेवाले होते हैं।'

सूर्यग्रहण में 'श्रीविद्या' और 'दुर्गा' मन्त्र के ग्रहण करने से मनुष्य मुक्ति की प्राप्ति करता है।

रुद्रयामल में लिखा है—सूर्यग्रहण में 'श्रीविद्या' का मन्त्र और चन्द्रग्रहण में 'गोपाल' का मन्त्र ग्रहण करना चाहिये।

गौतमीयतन्त्र में कहा है—चन्द्रग्रहणादि पर्व-योग के समय समस्त प्रकार की दीक्षा प्रशस्त कही गयी है। सूर्य तथा चन्द्रग्रहण के समय सभी प्रकार की दीक्षा ग्रहण की जा सकती है।

सूर्यग्रहणमें शक्ति-दीक्षाका और चन्द्रग्रहणमें वैष्णवी-दीक्षाका निषेध

न कुर्याच्छाक्तिकीं दीक्षां सूर्यपर्वणि साधकः।
न कुर्याद् वैष्णवीं दीक्षां यदि चन्द्रमसो ग्रहः॥

(मत्स्यसूक्त)

'साधक को चाहिये वह सूर्यग्रहण में शक्ति-दीक्षा और चन्द्रग्रहण में वैष्णवी-दीक्षा न दे।'

न कुर्याच्छाक्तिकीं दीक्षामुपरागे विभावसोः।
न कुर्याद् वैष्णवीं दीक्षां यदि चन्द्रमसो ग्रहः॥

(यामलः)

'सूर्यग्रहण में शक्ति-दीक्षा और चन्द्रग्रहण में वैष्णवी-दीक्षा न दे।'

ग्रहण और महातीर्थमें दीक्षार्थ मुहूर्तका विचार अनावश्यक है

'ग्रहणे च महातीर्थे नास्ति कालस्य निर्णयः ।'

(योगिनीतन्त्र)

'ग्रहण और महातीर्थ में दीक्षा-ग्रहण के लिये उचितानुचित समय के निर्णय की आवश्यकता नहीं है ।'

सूर्यग्रहणमें दीक्षार्थ मुहूर्तका विचार अनावश्यक है

रविसङ्क्रमणे चैव सूर्यस्य ग्रहणे तथा ।
तत्र लग्नादिकं किञ्चिन्न विचार्यं कथञ्चन ॥
रविसङ्क्रमणे चैव नान्यदन्वेषितं भवेत् ।
न वारतिथिमासादिशोधनं सूर्यपर्वणि ॥

'सूर्य के सङ्क्रमण में और सूर्यग्रहण में दीक्षार्थ लग्नादि के विचार की जरूरत नहीं है। सूर्य के सङ्क्रमण में और सूर्यग्रहण में लग्नादि का विचार अनावश्यक है। इनमें वार, तिथि और मास आदि के संशोधन भी अनावश्यक हैं।'

इसी प्रकार चन्द्रग्रहण में भी समझना चाहिये।

तीर्थादिमें दीक्षार्थ मुहूर्तादिका विचार अनावश्यक है

पुण्यतीर्थे कुरुक्षेत्रे देवीपीठचतुष्टये ।
प्रयागे श्रीगिरौ काश्यां कालाकालं न शोधयेत् ॥

(यामलः)

'गङ्गा आदि पुण्यतीर्थ में, कुरुक्षेत्र में देवी के चार पीठस्थानों में, प्रयाग में, कैलाशपर्वत में और काशी में दीक्षा-ग्रहणार्थ समय का विचार अनावश्यक है।'

सत्तीर्थेऽर्कविधुग्रासे पुण्यारण्ये वनेषु च।
मन्त्रदीक्षां प्रकुर्वाणो मासर्क्षादीन्न शोधयेत् ॥
(रत्नसागर)

'श्रेष्ठ तीर्थ में, चन्द्र और सूर्य-ग्रहण में, पवित्र अरण्य में और वन में गुरुदेव मन्त्र-दीक्षा (मन्त्रोपदेश) करते हुए मास और नक्षत्र आदि का संशोधन न करें।'

नवरात्रिमें दीक्षार्थ मुहूर्तका विचार अनावश्यक है

[1]चैत्र, आश्विन, आषाढ़ और माघ—इन चारों मासों में प्रतिवर्ष नवरात्रि होती है। इन चारों नवरात्रों में प्रतिपदा से लेकर नवमी-पर्यन्त तिथियों में दुर्गासप्तशती के अनुसार शैलपुत्री, ब्रह्मचारिणी, चन्द्रघण्टा, कूष्माण्डा, स्कन्दमाता, कात्यायनी, कालरात्रि, महागौरी और सिद्धिदात्री—इन नव देवियों का क्रमशः प्रतिपदा से लेकर नवमी-पर्यन्त अधिष्ठान रहता है।

अतः देवी के बोधन से अर्थात् नवरात्रि की प्रतिपदा से नवमी-पर्यन्त किसी भी तिथि में दीक्षा-ग्रहण से शिष्य को समस्त प्रकार की

१. चैत्रेऽऽश्विने तथाऽऽषाढे माघे कार्यो महोत्सवः।
नवरात्रे महाराज पूजा कार्या विशेषतः॥
(देवीपुराण ३।२४।२१)

आश्विने मधुमासे वा तपोमासे शुचौ तथा।
चतुर्षु नवरात्रेषु विशेषात्फलदायकम्॥
(देवीभागवत, माहात्म्य १।३१)

अभीष्टसिद्धि प्राप्त होती है। विशेषकर चैत्र और आश्विन मास की शुक्ल पक्ष की अष्टमी तिथि दीक्षा-ग्रहण के लिये विशेष प्रशस्त कही गयी है। इन दोनों महीनों की पवित्र अष्टमी की तिथियों में दीक्षा-ग्रहण करने से यथेष्ट फल प्राप्त होता है।

देवीबोधं समारभ्य यावत्स्यान्नवमी तिथिः।
कृता तासु बुधैर्दीक्षा सर्वाभीष्टफलप्रदा॥
बोधने चैव दुर्गायाः कालाकालं न शोधयेत्।
अशोकाख्याऽष्टमी यत्र रामाख्या नवमी तथा॥

(विष्णुयामल)

'देवीमन्त्र की दीक्षा प्रतिपदा से प्रारम्भ कर नवमी तिथि तक श्रेष्ठ मानी गयी है। क्योंकि इन तिथियों में पण्डितों के द्वारा दी गयी दीक्षा समस्त कामनाओं को पूर्ण करनेवाली होती है। दुर्गा–मन्त्र के दीक्षार्थ कालाकालका शोधन करना उचित नहीं है। अशोक नाम की अष्टमी और रामनवमी ये दोनों तिथि दुर्गामन्त्र को दीक्षा के लिये श्रेष्ठ मानी गयी है।'

गुरुकी आज्ञा ही श्रेष्ठ मुहूर्त है

शास्त्रों की आज्ञा है कि जिस दिन गुरु शिष्य को दीक्षा-ग्रहण के लिये आज्ञा प्रदान करें, उसके लिये वही दिन श्रेष्ठ है।

सर्वे वारा ग्रहाः सर्वे नक्षत्राणि च राशयः।
यस्मिन्नहनि सन्तुष्टो गुरुः सर्वे शुभावहाः॥

(मत्स्यसूक्त)

'जिस दिन गुरु सन्तुष्ट होकर मन्त्र-दीक्षा देने के लिये कहें, उस दिन सभी वार, ग्रह, नक्षत्र और राशि शुभ हो जाती हैं।'

यदैवेच्छा तदा दीक्षा गुरोराज्ञानुरूपतः ।
न तिथिर्न व्रतं होमो न स्नानं न जपः क्रियाः ॥
दीक्षायाः करणं किञ्चित् स्वेच्छयाप्ते तु सद्गुरौ ॥

'गुरु की आज्ञानुसार शिष्य को चाहिये जब वह कहें तब दीक्षा ले। गुरु की आज्ञा के सामने तिथि, वार, व्रत, होम, स्नान तथा जपादि क्रियाओं की प्रबलता नहीं रहती है।'

तिथिं विनापि दीक्षाया विशिष्टावसरं शृणु ।
दुर्लभे सद्गुरूणां तु सकृत्सङ्ग उपस्थिते ॥
तदनुज्ञा यदा लब्धा सा दीक्षावसरो भवेत् ।
ग्रामे वा यदि वाऽरण्ये क्षेत्रे वा दिवसे निशि ॥
आगच्छति गुरुर्दैवात् यदा दीक्षा तदा भवेत् ।
प्राप्ता दीक्षा तदा ज्ञेया गुरौ च समुपस्थिते ॥
यदैवेच्छा तदा दीक्षा गुरोराज्ञानुरूपतः ।
न कालनियमस्तत्र न देशनियमस्तथा ॥

'तिथि के बिना भी दीक्षा का समय कहा जाता है उसे सुनो। यदि सद्गुरु दुर्लभ हों और सद्गुरुओं से कहीं एक बार भी सङ्ग हो जाय, तो ऐसी स्थिति में सद्गुरु की आज्ञा जिस समय दीक्षार्थ हो जाय वही समय दीक्षा के लिये उपयुक्त माना गया है। ग्राम, अरण्य, पवित्र क्षेत्र, दिन या रात में दैववशात् यदि गुरुदेव आ जायँ, तो वही समय दीक्षार्थ उपयुक्त होता है। गुरु की उपस्थिति होने पर ही दीक्षा का समय समझ लेना चाहिये। गुरु की आज्ञा के अनुसार जब उनकी इच्छा हो, वही समय दीक्षार्थ उपयुक्त है। क्योंकि गुरुदेव की इच्छा के आगे काल या देश का नियम बाधक नहीं होता।'

दीक्षा-ग्रहणके लिये समयका विचार

प्रातःकाले[1] धर्मदा स्यात् सङ्गवे[2] राज्यदा स्मृता ।
मध्याह्ने सर्वसिद्धिः स्यात् परौ द्वौ च विनिन्दितौ ॥
(चिदम्बररहस्य)

'प्रातःकाल की दीक्षा धर्मदायक, सङ्गवकाल की दीक्षा राज्य-दायक और मध्याह्न काल की दीक्षा सर्वसिद्धिप्रद कही गयी है। परौ द्वौ अर्थात् अपराह्न और सायाह्न (मध्याह्न से सायङ्काल के बीच का समय) की दीक्षा निन्दित कही गयी है।'

दीक्षार्थ विहित स्थान

गोशालायां गुरोर्गेहे देवागारे च कानने ।
पुण्यक्षेत्रे तथोद्याने नदीतीरे च स्वाश्रमे ॥
धात्रीबिल्वसमीपे च पर्वताग्रे गुहासु च ।
गङ्गायास्तु तटे वापि कोटिकोटिगुणं भवेत् ॥
अथवा गुरुरेत्रास्य दीक्षयेत् यत्र तच्छुभम् ।
गुरोः परतरं नास्ति तद्वाक्यं श्रुतिसन्निभम् ॥
(पूर्णपद्धतौ)

'गोशाला में, गुरु-गृह में, देवस्थान में, जङ्गल में, तीर्थ में, बगीचे में, नदी के तीर में, अपने आश्रम में, धात्री (आमलकी) और बिल्व-

१. सूर्योदय के प्रारंभ से ६ घड़ी, ४६ पल और २४ विपल तक के समय को 'प्रातःकाल' कहते हैं।

२. प्रातःकाल के बाद और मध्याह्न के पूर्व काल को 'सङ्गव' कहते हैं।

वृक्ष के समीप में, पर्वत के ऊपर और कन्दरा (गुफा) में दीक्षा देनी चाहिये। गङ्गा के पावन तट पर दीक्षा लेने से अनन्त कोटि फल होता है। अथवा जिस स्थान में गुरुदेव दीक्षा देना चाहें शिष्य के लिये वही स्थान शुभ है। वस्तुतः शिष्य के लिये गुरु से बढ़कर इस संसार में और कोई वस्तु नहीं है। अतः गुरु का वाक्य वेद-वाक्य अथवा देव-वाक्य समझना चाहिये।'

गोष्ठे शिवालये शून्ये श्मशाने वा नदीतटे।
मन्त्रस्य ग्रहणं कृत्वा पूजयेत्सिद्धिमीप्सुभिः॥

(मत्स्यसूक्त)

'गोशाला में, शिवमन्दिर में, निर्जन स्थान में, श्मशान में और नदी के तट में गुरु के द्वारा मन्त्र-ग्रहण कर दीक्षित व्यक्ति अपनी अभिलषित सिद्धियों को प्राप्त कर सकते हैं।'

दीक्षार्थ निषिद्ध स्थान

गयायां भास्करक्षेत्रे [1]विरजे चन्द्रपर्वते।
चत्वरे च मतङ्गे च तथा कन्याश्रमेषु च॥
न गृह्णीयात्ततो दीक्षां तीर्थेष्वेतेषु पार्वती।

(योगिनीतन्त्र)

'हे पार्वती ! गया में, भास्करक्षेत्र (कुरुक्षेत्र) में, विरजाक्षेत्र (जगन्नाथपुरी) में, चन्द्रपर्वत (मलयाचल) में, चतुष्पथ में, मातङ्गदेश में और कन्यागृह में अर्थात् इन तीर्थों में दीक्षा नहीं लेनी चाहिये।'

---

१. उत्कले नाभिदेशश्च विरजाक्षेत्र उच्यते।
विमलाऽत्र महादेवी जगन्नाथस्तु भैरवः॥

संक्षिप्तदीक्षाविधिः

शिष्यः दीक्षाग्रहणात् पूर्वदिने प्रातः क्षौर–स्नानादिकं विधाय पञ्चगव्यप्राशनं कुर्यात्। ततः सङ्कल्पः—देशकालौ संकीर्त्य "अमुकगोत्रोत्पन्नोऽमुकनामाऽहं मम एतच्छरीराधिकरणकज्ञाताज्ञातकृतसर्वविध–पापक्षयार्थं सहस्रगायत्रीजपं करिष्ये" इति सङ्कल्प्य, तद्दिने यथाशक्त्योपवासमथवैकवारं हविष्यान्नं भक्षयेदपरदिने स्नानादिकं कृत्वा स्वस्तिवाचनपूर्वकं सङ्कल्पं कुर्यात्। देशकालौ संकीर्त्य "मम इह जन्मनि जन्मान्तरे वा कृतानां कायिक-वाचिक-मानसिक-सांसर्गिकसर्वविध-पापानां निवृत्तिपूर्वकं धर्मार्थकाममोक्षचतुर्विधपुरुषार्थसिद्धिद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थममुकदेवतामन्त्रग्रहणं करिष्ये" इति सङ्कल्प्य, गणेशपूजनं कलशस्थापनं पुण्याहवाचनादिकं कृत्वा गुरुवरणं कुर्यात्। देशकालौ संकीर्त्य "अमुकगोत्रोत्पन्नोऽमुकशर्माऽहं अस्मिन् गुरुमन्त्र-दीक्षाकर्मणि अमुकगोत्रममुकशर्माणं ब्राह्मणमेभिर्गन्धाक्षतपुष्पमालावस्त्रालङ्कारादिभिर्गुरुत्वेन त्वामहं वृणे" इति वदेत्। "वृतोऽस्मि" इति गुरोः प्रतिवचनम्। "यथाविहितं कर्म कुरु" इति शिष्यो ब्रूयात्। "यथा ज्ञानं करवाणि" इति गुरुर्वदेत्। ततो गुरुः सर्वतोभद्रपीठोपरि कलशं संस्थाप्य सम्पूज्य च तस्योपरि प्रदेयमन्त्रं यन्त्रे विलिख्य संस्थापयेत्। पश्चात् षोडशोपचारैः यन्त्रं सम्पूजयेत्। ततः शिष्यो मन्त्रदीक्षाग्रहणार्थं प्राञ्जलिर्भूत्वा गुरुसमीपमुपतिष्ठेत्। पश्चान्मन्त्रग्रहणार्थं गुरुमभ्यर्थयेत्। ततो गुरुः शिष्यशिरसि हस्तं दत्वा मातृकान्यासं मूलमन्त्रञ्च जपन् शङ्खस्थजलेन मूलमन्त्रेणाष्टवारं शिष्यमभिषिच्य दातव्यमन्त्रमष्टोत्तरशतं प्रजप्य "अमुकमन्त्रं तेऽहं ददामि" इत्युक्त्वा शिष्यहस्ते जलं दद्यात्। "ददस्व" इति शिष्यो वदेत्। ततो गुरुः प्राङ्मुखो भूत्वा शिष्याञ्जलिं पुष्पैः प्रपूर्य शिष्यशिरो नूतनवस्त्रेणाच्छाद्य तस्य दक्षिणकर्णे गुरुमन्त्रं त्रिः श्रावयेत् वामकर्णे च सकृत्। विधिरयं द्विजानामेव। स्त्री–शूद्राणां तु वामकर्णे त्रिवारं दद्यात्। उक्तञ्च —

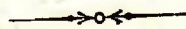
गुरुस्तु प्राङ्मुखो भूत्वा शिष्यः प्राचीमुखस्थितः।
त्रिवारं दक्षिणे कर्णे वामे चैकं तथा पुनः॥
(विशुद्धेश्वरे)

गृहीतमन्त्रः शिष्यः फलद्रव्यादिकं गुरवे समर्प्य तत्पादपद्मयोः पतन् गुरुं प्रणमेत्। ततो गुरुः—

ॐ उत्तिष्ठ वत्स ! मुक्तोऽसि सम्यगाचारवान् भव।
कीर्तिः श्रीः कान्तिपुत्रायुर्बलारोग्यं सदास्तु ते॥

इत्युक्त्वा गुरुः स्वशिष्यमुत्थापयेत्। शिष्योऽपि संस्थापितदेवं सम्पूजयेत्। ततः शिष्योऽष्टोत्तरसहस्रमष्टोत्तरशतं वा गुरुप्रदत्तमन्त्रजपं विधाय तेनैव गृहीतगुरुमन्त्रेण प्रधानपीठस्थप्रधानदेवमन्त्रेण चाष्टोत्तरसहस्रमष्टोत्तरशतं वा हवनं कुर्यात्। ततः देशकालौ संकीर्त्य "अमुकगोत्रोत्पन्नोऽमुकशर्माऽहं कृतस्य दीक्षाग्रहणकर्मणः साङ्गतासिद्ध्यर्थं तत्सम्पूर्णफलप्राप्त्यर्थममुकगोत्रायामुकशर्मणे गुरवे मनसोद्दिष्टां दक्षिणां तुभ्यमहं सम्प्रददे" इत्युक्त्वा गुरवे दक्षिणां दद्यात्। पश्चात् देवविसर्जनादिकं कृत्वा गुरुः स्वशिष्यं तिलकादिकं विधाय फलादिकमाशीर्वादं दद्यात्। शिष्यो यथाशक्ति ब्राह्मणान् भोजयेत्।

इति संक्षिप्तदीक्षाविधिः।



दीक्षा-ग्रहण-सामग्री

रोली २५ पैसा
मौली २५ पैसा
धूपवत्ती २५ पैसा
केशर २ माशा
कपूर २ तोला
अबीर (गुलाल) २५ पैसा
बुक्का (अभ्रक) २५ पैसा
सिन्दूर २५ पैसा
पान १०
सुपारी १०० अथवा २५
पेड़ा २ पाव
ऋतुफल २ दर्जन
इलायची छोटी २ तोला
पंचमेवा २ छटांक
मिश्री १। पाव
दुग्ध १ पाव
दही १ पाव
चीनी १ पाव
घृत
सहत १ छटांक
गोबर
गोमूत्र
यज्ञोपवीत ५

पुष्पमाला ५
फुटकर पुष्प ५० पैसा
बिल्वपत्र २० पैसा
तुलसी २० पैसा
दूर्वा १५ पैसा
गंगाजल
नारियल ३
गिरिका गोला ३
सप्तमृत्तिका
पञ्चपल्लव
नवग्रह की लकड़ी
चौकी काष्ठ की १
पीढ़ा २
लाल रंग ५० पैसा
पीला रंग ५० पैसा
हरा रंग ५० पैसा
काला रंग ५० पैसा
सफेद कपड़ा १॥ गज
लाल कपड़ा १ गज
कलश तांबे का बड़ा १
लोटा १
कांसेका कटोरा बड़ा १
बघोना (बहुगुना) १

धोती २
अंगोछा ३
गुरु के लिये वस्त्र ५
दीक्षा-ग्रहणार्थ ऊनी अथवा रेशमी चादर १
हवन-सामग्री–
तिल २ पाव
चावल १ पाव
यव २ छटांक
चीनी १ छटांक
घृत २ पाव
गुग्गुल ५० पैसा
पंचमेवा १ छटांक
आम की लकड़ी ३ कीलो
गोयठा (कण्डा) १०

